बघेलखण्ड गौरवग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प

संस्कृत-काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का इतिहास

(भीमदेव से भावसिंह तक)

(१२४५ ई. से १६९४ ई. तक)

लेखक

डा. सुद्युम्न आचार्य

प्रकाशक

वेदवाणी वितानम् प्राच्य विद्या शोध संस्थानम्

रघुराजनगर, कोलगवाँ, सतना (म.प्र.)

बघेलखण्ड गौरवग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प

संस्कृत-काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का इतिहास

(भीमदेव से भावसिंह तक)

(१२४५ ई. से १६९४ ई. तक)

लेखक

डा. सुद्युम्न आचार्य

व्याकरणाचार्य M.A. (अष्टस्वर्णपदक-विजेता) D. Phil

रीडर- स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग

मु. म. टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज

बलिया (उ. प्र.)

प्रकाशक
वेद वाणी वितानम्
प्राच्य विद्या शोध संस्थानम्
कोलगवाँ, सतना (म. प्र.)

प्रथम बार- १०००

मूल्य : 12 /= रु. मात्र

वर्ष- जून १९९५

मुद्रक-
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी

प्राक्कथन

बघेलखण्ड गौरव ग्रन्थमाला के अन्तर्गत महाकवि माधव उरव्य विरचित वीरभानूदय काव्यम् तथा अन्य काव्यों के आधार पर इतिहास को सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए महती प्रसन्नता हो रही है। संस्कृत काव्य में बघेलखण्ड के इतिहास विषय पर इस बहुमूल्य ग्रन्थरत्न की रचना वीरभद्र के जन्म के पश्चात् १५५५ ई. में हुई थी। इसकी १५९१ ई. में लिखी हुई पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। इसके बहुमूल्य महत्त्व को समझते हुए दीवान बहादुर पं. जानकी प्रसाद चतुर्वेदी ने १९२० ई. में इसकी संशोधित प्रतिलिपि तैयार करने के लिये धार के तत्कालीन इतिहास विभाग के प्रमुख श्री काशीनाथ कृष्ण लेले के पास भेजा था। इसकी प्रतिलिपि तैयार होने के पश्चात् १९२१ ई. में दोनों प्रतियों को बड़ौदा के पुरातत्त्व विभाग के संचालक डा. हीरानन्द शास्त्री जी के पास भेजा गया। शास्त्रीजी ने इस ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण सामग्री के आधार पर १९२५ तथा १९३० ई. में The Baghel dynasty of Rewa इत्यादि बहुमूल्य निबन्ध लिखे।

इस ग्रन्थ के अत्यन्त महत्त्व को देखते हुए, श्री शास्त्रीजी ने, उन्ही के शब्दों में Labour of Love अथवा प्रीतिपूर्ण परिश्रम की इच्छा प्रकट की। उनकी इस इच्छा का सम्मान करते हुए महाराज गुलाब सिंह जूदेव ने राजकीय व्यय पर इसका प्रकाशन स्वीकार किया। तब १९३५ ई. में श्री लेले तथा श्री शास्त्री जी द्वारा यह ग्रन्थ सम्पादित किया गया तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में इस ग्रन्थ का मुद्रण किया गया। पं. जानकी प्रसाद जी ने श्री लेले तथा श्री शास्त्री जी के प्रीतिपूर्ण परिश्रम के लिये महाराज रीवा की ओर से धन्यवाद प्रदान किया।

मुद्रण के पश्चात् इस ग्रन्थ की प्रतियाँ लखनऊ से लाकर तत्कालीन महाराजा प्रेस तथा वर्तमान गवर्मेंट प्रेस रीवा में लाकर रख दी गईं। कहते हैं कि एक बार वहाँ आग लग गई तथा ग्रन्थ की सब प्रतियाँ जलकर नष्ट हो गईं। माननीय श्री निज़ामी ने बताया कि इस ग्रन्थ की एकमात्र पाण्डुलिपि मुद्रण के पश्चात् सरस्वती कोष भण्डार किला में रखी गयी थी। पर अब वहाँ उसका पता नहीं चलता। पुस्तक की मुद्रित प्रति माननीय श्री अग्निहोत्री जी के समय ही दुर्लभ हो गई थी तथा उन्होंने कठिनाई से इसे प्राप्त किया था। इस तथ्य को उन्होंने अपने ग्रन्थ बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. १०८ में स्वीकार किया है।

पुस्तक के ६० वर्ष के पश्चात् अब इसकी दुर्लभता की सहज ही कल्पना की जा सकती है। यह ग्रन्थ संस्कृत काव्य तथा इतिहास दोनों ही दृष्टि से अद्वितीय

है। किसी भी भाग के प्रामाणिक इतिहास को जानने के लिये उनके मूल ग्रन्थ का होना अनिवार्य होता है। उस मूल ग्रन्थ के अनुवाद या उद्धरणों से कभी उसकी भरपाई नहीं की जा सकती। इस प्रकार स्पष्टतः उसका कोई विकल्प नहीं बन सकता। इस दृष्टि से बघेलखण्ड के इतिहास के लिये इस ग्रन्थ का महत्त्व अपने आप में अनूठा है।

मुख्यत: इस काव्य के आधार पर इतिहास लिखने का उद्देश्य कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमुख रूप से रेखांकित करना है। काव्य से उभरे कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को तो व्यापक प्रचारित करने की आवश्यकता है। इनमें वीरसिंह की वीरता तथा देशभक्ति तथा रामचन्द्र का स्वाभिमान प्रमुख है। यह इतिहास का तथ्य है कि वीरसिंह के समय इस देश में छोटे-छोटे असंगठित राज्य थे। इस समय यदि किसी ने भी अपने राज्य की चिन्ता से ऊपर उठकर देश की एकता तथा स्वाधीनता की दृष्टि से कुछ किया हो तो उसे यथोचित महत्त्व मिलना चाहिये। इसी भावना से प्रेरित होकर चित्तौड़ के राणा सांगा ने अनेक बार युद्ध करके दिल्ली के पठान बादशाहों पर विजय प्राप्त की थी। वीरसिंह बघेल ने अपने सीमित संसाधनों के होते हुए भी भटदेश के अलावा अन्य राज्यों की संगठित स्वाधीनता की भावना से राणा साँगा की सहायता करते हुए बाबर के विरुद्ध युद्ध किया था। यह देशभक्ति का अनूठा उदाहरण है।

इसी प्रकार रामचन्द्र बघेल जीवन भर बादशाह अकबर के दरबार में मिलने के लिये राजी नहीं किये जा सके थे। केवल अपने जीवन की सान्ध्यवेला में अकबर के भेजे हुए सरदारों के द्वारा बहुत दबाव डालने पर एक बार गए थे।

संस्कृत कवियों के लिये एक अन्य भी तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। विद्वानों का विचार है कि भारत के मध्ययुग में वीरभानु तथा रामचन्द्र बघेल जैसा संस्कृत कवियों का आश्रयदाता अन्य कोई नहीं हुआ। इस युग में इन दोनों राजाओं के लिये जितने अधिक कवियों की जितनी प्रशंसाएँ प्राप्त हैं उतनी अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुई हैं। (देखिये पृ. ३१) यद्यपि इन राजाओं ने स्वयं संस्कृत रचनाएँ नहीं की हैं। फिर भी संस्कृत के उस विषम युग में भी इन राजाओं का यह संस्कृत प्रेम बहुत प्रशंसनीय है जिसे व्यापक समादर मिलना चाहिये।

मैकडानल आदि पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत की अनेक विशेषताओं के साथ २ एक कमी की ओर भी संकेत किया है— इसमें इतिहास की मूल भावना के अनुसार लेखन अपेक्षाकृत कम है। इसमें सन्देह नहीं कि वीरभानूदयकाव्य तथा इसे जैसे अन्य

अनेक बघेलखण्ड के संस्कृत इतिहास-काव्यों के प्रकाशन से इस कमी को अपेक्षाकृत दूर किया जा सकता है।

इस भावना से प्रेरित होकर मैंने बघेलखण्ड के इतिहास-काव्यों के प्रकाशन के क्रम में प्रथमतः इस काव्य के प्रकाशन का संकल्प लिया है। फिलहाल इसका प्रथम सर्ग प्रकाशित किया जा रहा है। यह ग्रन्थ मूलमात्र प्रकाशित हुआ था। हिन्दी अनुवाद न होने से सामान्य जन को कठिनाई होती थी। अतः इसकी व्याख्या, हिन्दी अनुवाद, भूमिका, इतिहास-विवरण आदि के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। मैंने श्री शास्त्री जी की भावना के अनुरूप इतिहास एवं काव्यशास्त्र के प्रति प्रीतिपूर्ण परिश्रम किया है। आशा है सुधी जन इस कार्य को महत्त्व प्रदान करेंगे।

संस्कृत काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का इतिहास

वीरभानूदयकाव्यम् में बघेल नरेशों का इतिहास भीम नरेन्द्र से प्रारम्भ होता है। यद्यपि जमाबन्दियों में व्याघ्रदेव से प्रारम्भ करके छठे राजा को भीमल या भीममल्ल बताया गया है। प्रस्तुत काव्य में संकेत से इनसे शासन का प्रारम्भ सूचित होता है। क्योंकि बघेल नरेशों को व्याघ्रपाद् गोत्र का बताया गया है[१]। संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार प्रसिद्ध पूर्वपुरुष के नाम से ही गोत्र का नाम रखा जाता है। अतः व्याघ्रपाद् का प्रतापी पूर्व पुरुष होंना इस काव्य से भी प्रमाणित हैं।

इस व्याघ्रपाद् की परम्परा में भी भीमदेव को प्रमुख मानते हुए इस काव्य में यहीं से इतिहास का प्रारम्भ किया गया है। इनका शासन काल १२४५ ई. से प्रारम्भ होता है। क्योंकि अन्य ग्रन्थों में इनके बड़े भाई वीसलदेव को १२४५ ई. से १२६२ ई. तक प्रथम बघेल नरेश बताया गया है[२]।

यद्यपि बघेल वंशवर्णनम् में भीममल्ल को वीसलदेव का पुत्र बतांया गया है। कलिंजर में इनका भरवंशियों के सेवक के रूप में पालन पोषण बताया गया है[३]। परन्तु जमाबन्दियों में बीसलदेव को बड़ा भाई तथा भीमदेव को छोटा भाई बताते हुए भर राजा का चाकर बताया है। इन दोनों ने भर राजा की सेना में नौकरी की तथा इस प्रकार धीरे-धीरे शक्ति प्राप्त की। ये ठाकुर कहे जाने लगे[४]। पश्चात् दोनों भाइयों ने कूटनीति खेलते हुए गहोरा में लोधियों

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् ९।१५ तथा २१

२. Chaulukyas of Gujarat - A.K. Majumdar, Chapter - 10

३. भरान्वये वीसलदेव एधितः धनैरमानैर्बहुराजमानितः। श्लोक १२
तत्सुनुरासीत् कमलायताक्षः--- नाम्ना प्रसिद्धःस तु भीममल्लः। श्लोक १३

४. कलिंजरहिं आइ दुई भाई भर राजा के चाकर भे वीसलदेव जेठे, भीवमल लहुरे गहोरहिं आए। पुरिखा सात भरि गहोरा रहे। ठाकुर कहावें लागि—एकत्रा बान्धोगढ़ जमाबन्दी १

के मन्त्री तिवारी ब्राह्मण को आधे राज्य का लालच देकर फोड़ लिया तथा इसके पश्चात् तत्कालीन लोधी राजा को मारकर गहोरा को कलिंजर में सम्मिलित कर लिया[१]।

इतिहासकारों के अनुसार कलचुरियों की सत्ता टूटने के बाद यमुना के दक्षिण में कई छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए थे। इनमें भरवंशी क्षत्रिय भी थे। यह जाति बहुत प्राचीन है। इन्होंने क्रमशः आर्य धारा से घुल मिलकर अनेक वैदिक पौराणिक मान्यताओं को अपना लिया था[२]। ये शिवलिंग तथा इनकी पूजा सामग्री का भार सिर पर ढोते हुए चलते थे। अतः इनका नाम भारशिव पड़ा था। इस क्षेत्र में इनका पर्याप्त प्रभाव था। बौद्ध युग में इनके ही नाम पर प्रसिद्ध भरहुत स्तूप का निर्माण हुआ था। यह प्राचीन भर लोगों के नाम पर भारभुक्ति नाम से प्रसिद्ध था।

इन्हीं भरवंशी शासकों के सेवक बनकर तथा बाद में शक्ति प्राप्त करके भीमदेव ने गहोरा पर अधिकार कर लिया। काव्य में भीम को एक विद्वान् तथा इन्द्रियजित् के रूप में दिखाया गया है[३]।

रणिंगदेव—इसके पश्चात् भीमदेव के पुत्र रणिंगदेव ने गहोरा को अपने शासन में भली प्रकार व्यवस्थित किया तथा कलिंजर को छोड़कर इसे ही राजधानी बनाकर शासन करना प्रारम्भ किया।

प्रस्तुत काव्य में यहीं पर सर्वप्रथम गहोरा का उल्लेख करते हुए रणिंगदेव को यहाँ का शासक बताया है[४]। गहोरा पर अधिकार करने की सूचना देते हुए इसी श्लोक में लिखा है कि इस राजा ने कृपाण के बल से धरती को जीता। इस प्रकार विजय करने से तथा शासन करने से उसका आसमुद्र यशोमण्डल फैल गया था[५]। यह राज्य हित को भी देखने वाला था।

---

१. तिवारी मिलाइ कै आधा राजं देई कहि हींसा। लोधिन का मारिनि - जमाबन्दी ३
भीमलदेव गहोरा के लोधिन कहं मारि के गहोरा छंड़ाई लीन्हैंनि जमाबन्दी १

२. जिन भारशिवों ने दस अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मण धर्म को फिर से प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की थी, वे स्वयं नाग थे - महायात्रा डा. रांगेय राघव पृ. ६३५

३. विद्याविशुद्धाननः, इन्द्रियाणां जैत्रः, वीरभानू. १.६-७

४. वीरभानूदयकाव्य १।१०   ५. वही १.८

वालनदेव—रणिंगदेव का पुत्र वालनदेव था। यह अतिसुन्दर तथा बघेल वंश में चन्द्र सदृश था[१]। वह बघेल वंश का दीपक था। इसने मुख्यतः राज्य शासन की ओर ध्यान दिया। अतः कहा है कि नल के समान समुद्रावरणा धरती का पालन किया[२]।

वल्लारदेव—वालनदेव का पुत्र वल्लारदेव हुआ। इसे संसार रूपी समुद्र के लिये पोत या नाव के समान कहा गया है[३]। यह राजा बलि के समान दानवीर था। अतः इसे बघेल वंश का कल्पवृक्ष बताया गया है[४]।

सौभाग्य से इस राजा के शासन-काल की एक सुनिश्चित सूचना प्राप्त होती है। गहोरा में एक सती अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसमें वल्लारदेव के राज्य में संवत् १४१७ का वर्ष दिया गया है[५]। इससे स्पष्ट है कि १३६० ई. में वल्लारदेव गहोरा में राज्य कर रहे थे। इनके 'महाराजाधिराज' विशेषण से प्रतीत होता है कि गहोरा के प्रथम स्वतन्त्र राजा यही थे। फिरोजशाह तुगलक से इन्हें विशाल भूभाग जागीर में प्राप्त हुआ था। जमाबन्दियों से भी यही ज्ञात होता है। वहाँ कहा है कि इस राजा वल्लारदेव ने सहिजना (बाँदा) से लेकर रानी मड़ई (मिर्जापुर) तक का सम्पूर्ण प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। गहरवारों का सुद्धा बड़ेरा नामक देश जो आधुनिक माण्डा में है, उसे भी अपने अधीन करके गहोरा में राज्य किया[६]।

पूर्वोक्त अभिलेख इस समय प्रयाग के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित है। यह ६ फुट लम्बी तथा ३ फुट चौड़ी शिला में अंकित है। इसमें दाईं बाईं ओर दो स्त्रियों की मूर्ति खुदी है तथा मध्य में कमर में कटार लिये एक पुरुष खड़ा है।

---

१. वही १.१५   २. वही १.१७   ३. वही १.१९

४. वही १.२१

५. संवत् १४१७ समये जेष्ठा वदी १३ बुद्धे महाराजाधिराज श्री वल्लादेव राज्ये—सती अभिलेख का मूल पाठ।

६. पातसाह का कोनी लगाइ तरिहार सहिजना ते रानी मड़ई भरि सब लीन्हेंनि। गहरवारन का देस सुद्धाबडेरा पातसाह दीन राजा भें गहोरा में। बोलारदेव ते राजा भें- जमाबन्दी ३

इन वल्लारदेव की रानी राजमल्लदेवी हुईं। यह चन्देला जनों का अलंकार यसराजदेव की पुत्री थी[१]। इन्होंने अपने महल से मारुत या वायव्य दिशा में एक तालाब खुदवाया था[२]।

वीरमदेव—वल्लारदेव के पुत्र सिंहदेव हुए तथा इनके पुत्र वीरमदेव हुए। सिंहदेव ने युवावस्था में ही यमुना में शरीर त्याग कर दिया था[३]। अतः वीरमदेव के पितामह वल्लारदेव ने ही इनका पालन पोषण किया तथा परिपक्व होने पर इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया[४]।

वीरमदेव बड़े प्रतापी राजा हुए। अतः काव्य में इन्हें रण में किरीटी या शिव के सदृश बताया गया है[५]। यहाँ यह भी बताया है कि म्लेच्छ राजा उनके सामने नहीं टिकते थे[६]।

यह तथ्य इतिहास से भी प्रमाणित है। बघेलों ने जौनपुर के शर्की इब्राहीम शाह (१४००-१४४० ई.) से मित्रता की थी तथा उनकी सहायता के लिये दिल्ली के तुगलकों और कालपी के मालिकजादा (१४१३ ई.) पर कई आक्रमण किये थे[७]।

इस विवरण से प्रकट है कि बघेल नरेश जौनपुर के नवाबों का साथ लेकर यवन राजाओं का विरोध करते रहे। जौनपुर के नवाबों से मित्रता आगे की पीढ़ियों में भी चलती रही।

पर वीरमदेव का यवनाधिपों से विरोध सदा सफल नहीं हुआ। उन्हें बीच-बीच में पराजय का भी मुँह देखना पड़ा। इसका उल्लेख इस काव्य में नहीं है। पर मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा है कि कालपी का नवसिंहासनारूढ राजा नसीरुद्दीन महमूद शाह (१३९०-१४११ ई.) ने १३९५ ई. में गहोरा में मुकद्दम वीरम बघेल पर हमला किया था और अगले वर्ष गहोरा को नेस्तनाबूद कर दिया[८]।

---

१. वीरभानूदयकाव्य १.२४ २. वही १.२६ ३. वही १.३४
४. वही १.३५ ५. वही १.३३ ६. वही १.३९
७. Malikagada dynasty of Kalpi - Nigami Page 3
८. तारीखी मोहम्मदी - मो. बिहामिद खानी पृ. ४७२

इसके विपरीत वीरमदेव ने अनेक स्थानों पर सफलता भी प्राप्त की। क्योंकि काव्य में बताया है कि इस नरेश ने सहुण्डा (सेंवढ़ा-जि. दतिया) पर अधिकार करके वहाँ निवास किया था[१]। इस प्रकार वह यवनाधिप से विग्रह करके सुशोभित हुआ। इस विवरण से प्रकट है कि उस समय दिल्ली के तुगलक सुल्तानों के विरुद्ध जो विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, उसे बनाने में वीरमदेव कुछ अंशों में सफल रहा था।

इसने अन्त में यमुना में प्राण त्याग दिये।

नरहरिदेव—वीरमदेव की रानियों में अपूर्वदेवी सबसे प्रिय थीं। उससे नरहरिदेव उत्पन्न हुआ[२]। काव्य में इन्हें बघेल वंश की दिव्य मणि के रूप में वर्णन किया है[३]।

नरहरिदेव के राजला नामक महिषी सबसे बड़ी पत्नी थीं। राजला के पिता अर्जुन थे जो कि गंगा के समीप गढ़ के राजा थे[४]।

भैदचन्द्र

जन्म : संवत्-१४७२ अथवा १४१५ ई. मृत्यु : १४९५ ई.
राज्य शासन १४७२ ई. से १४९५ ई. तक

नरहरिदेव की राजला नामक महारानी से भैदचन्द्र का जन्म हुआ। ये अपने पूर्वजों के समान प्रतापी राजा थे। प्रस्तुत काव्य में कहा है कि इन्होंने काशी तथा प्रयाग तथा गया को जीतकर जजिया टैक्स से मुक्त कराया था[५]।

इनके जीवनकाल में इस प्रकार के अवसर आ चुके थे। जैसा कि ऊपर लिखा गया, इनके दादा वीरमदेव जौनपुर के नवाबों के साथ मित्रता रखते थे। इस मित्रता को आगे बढ़ाते हुए राजा भैदचन्द्र भी तत्कालीन नवाब हुसेन

१. वीरभानूदय १.४४। श्लोक के 'हत्वा सहुण्डां नगरीं महीयां' इसके सहुण्डा शब्द को स हुण्डां इस प्रकार अलग अलग पढ़ कर कुछ लोग हुण्डा नगरी मानते हैं।
२. वीरभानूदयकाव्य १.४६ ३. बघेलवंशद्युमणिः - वही १.५०
४. वही १.५२
५. काशीं प्रयागं च गयां च जित्वा स निःकरां निष्करमाशु चक्रे - वही १.५६

शाह शर्की के सहयोगी बने तथा उन्हें शरण प्रदान किया। उस समय दिल्ली सम्राट बहलोल लोदी ने इस नवाब को जीता था। तथा जौनपुर में मुबारक खाँ को अपना सूबेदार नियुक्त किया था। यह घटना १४८७-८९ ई. की है[१]।

कुछ समय-बाद १४९२ ई. में सिकन्दर लोदी के शासन-काल में जबर्दस्ती थोपे गए इस सूबेदार मुबारक खाँ को आक्रमण करके हटा दिया गया तथा राजा भैदचन्द्र ने इसे कैद कर लिया[२]। इस प्रकार जौनपुर, गढ़ (कर्णतीर्थ, वर्तमान-कन्तित मिर्जापुर उ. प्र.), अरैल, प्रयाग आदि गहोरा से उत्तर का इलाका भैदचन्द्र द्वारा अपने अधिकार में कर लिया गया था। इस घटना को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत काव्य में कहा है कि इस नरेश ने काशी तथा प्रयाग को जीता।

भैदचन्द्र का जौनपुर के शर्की सुल्तानों का पक्ष लेना स्पष्ट प्रमाणित है। क्योंकि सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने इसका समर्थन किया है[३]। इन लोगों ने भीद या भेद नाम से इस राजा का उल्लेख किया है।

इस बघेल नरेश द्वारा गया को जीतना भी सम्भावित है। प्रस्तुत काव्य में कहा है कि यह राजा बगीसर पर अधिकार करने के पश्चात् बहुत समय तक वहाँ सुशोभित हुआ। अग्निहोत्री जी का कहना है कि यह बगीसर बिहार का बक्सर ही है[४]।

परन्तु शास्त्री जी ने नियामतुल्ला के कथन को उद्धृत करते हुए यह बताया है कि यह बगीसर उ. प्र. के उन्नाव जिले के ३४ मील दक्षिण पूर्व है। इस समय यहाँ ग्राम तिलोकचन्द प्रान्तीय शासक था। इसने सुल्तान बहलोल लोदी के सम्मान तथा समर्थन में अपनी सेना प्रदान की थी। इस सेना ने जौनपुर के सुल्तान हुसेन शाह के विरुद्ध युद्ध लड़ा था। इस अभियान

१. Elliot and dowson : the History of India Vol. 5 Page 89
२. Elliot and dowson the History of India Vol. 5 Page 93
३. अलबदाओनीः लोः ज़िल्द १ पृष्ठ ४०८, तारीखे फरिश्ताः ब्रिग्स जिल्द १, पृष्ठ ५६९-७१
४. बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. १५६

में हुसेन शाह बूढ़ा और असमर्थ होने से पराजित होकर भट देश की ओर भाग आया। तब भाट के राजा भैदचन्द्र ने राम तिलोकचन्द की सेनाओं के साथ संघर्ष किया तथा जौनपुर के हुसेन शाह को कुछ लाख टका और १०० घोड़े तथा हाथी प्रदान किये[१]।

इस प्रकार अपने भयंकर संघर्ष में भैदचन्द्र ने बगीसर को जीत लिया। जैसा कि उपर्युक्त श्लोक से भी प्रकट है। शास्त्री जी ने लिखा है कि इस संघर्ष में भैदचन्द्र ने सम्भवतः बगीसर को लूटा तथा उसे अपने अधिकार में कर लिया जो कि अभी तक इसके विरोधी के पक्ष में था[२]।

इसी अधिकार के क्रम में राजा भैदचन्द्र का बगीसर से परिचय सम्पर्क बढ़ा। तब इस काव्य के अनुसार बगीसर के वीर शासक राजा सातन की पुत्री उद्धरण देवी भैदचन्द्र की रानी बनी[३]।

वाहरराय—भैदचन्द्र की बड़ी रानी उद्धरण देवी से वाहरराय उत्पन्न हुआ। यह ज्येष्ठ राजकुमार युवावस्था में ही दिवंगत हो गया। तब इसकी गन्धर्व देवी आदि ३ पत्नियाँ सती होने के लिये अग्नि में प्रवेश कर गईं[४]।

शालिवाहन

जन्म[५] : संवत् १४९२ अथवा १४३५ ई. मत्यु १५०० ई.

राज्य शासन- १४९५ से १५०० ई. तक

सिकन्दर लोदी का समकालीन

अपने पिता की शीघ्र मृत्यु के कारण राजा भैदचन्द्र के पश्चात् शालिवाहन उनके उत्तराधिकारी बने। ये बहुत विनम्र तथा दयालु शासक थे। ये सदा प्रजा

---

१. Elliot and Dowson: History of India Vol. 5 Page 89

२. Probably, during this struggte, Bhaidachandra pluandered or even seized Baksar which belonged to the posite party— Critical analysis page 22

३. वीरभानूदयकाव्यम् १।६२ ४. वीरभानूदयकाव्यम् १.६५

५. राजा सारिवाहनदेव के जन्म सं १४९२। एकन्ना जमाबन्दी-१

के कल्याण में लगे रहते थे। काव्य के अनुसार ये प्राणियों के लिये पोतसदृश थे[१]। ये लोगों से किसी प्रकार का द्वेष या विरोधभाव नहीं रखना चाहते थे। ये युधिष्ठिर के समान अजातशत्रु थे। काव्य में उसी श्लोक में कहा है कि इनके शासन करते हुए इनके मन में किसी के प्रति दस्युभाव नहीं था।

यही कारण है कि १४९५ ई. में राजा भैदचन्द्र के राज्य में सिकन्दर लोदी ने जब पुनः चढ़ाई की थी, तब इन्होंने नहीं, अपितु इनके पुत्र युवा राजकुमार वीरसिंह ने शाही सेना को रोका था।

हम्मीर का अवतार कहे जाने वाले चाहुवाण (चौहान) वंशी पूरणमल्ल की पुत्री कल्याण देवी से इनका विवाह हुआ था। जैसे इन्द्र से शची ने जयन्त को पाया था, वैसे ही शालिवाहन की रानी कल्याणदेवी ने पुत्र वीरसिंह को प्राप्त किया[२]।

शालिवाहन की एक अन्य रानी अर्थदेवी थी। उनसे उदयकर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह निष्काम प्रकृति का था। अतः इसने पिता द्वारा प्रदत्त धन सम्पत्ति का परित्याग करके उत्कल देश की यात्रा की तथा वहाँ गजवंशी राजा पुरुषोत्तम की पुत्री से विवाह करके वहीं बस गया।

वीरसिंह

जन्म[३] : संवत् १५२४ अथवा १४६७ ई. मृत्यु- १५४० ई. (सन्दिग्ध)

राज्य शासन- १५०० ई. से १५४० ई. तक (सम्भावित)

सिकन्दर लोदी तथा बाबर के समकालीन

राज्य सीमा-गढ़ा (जबलपुर) से अरैल (प्रयाग) तक

शालिवाहन के वीरसिंह नामक पुत्र हुए। जैसे रघु से दिलीप अथवा जिस प्रकार पाण्डु से युधिष्ठिर शोभित हुए थे, उसी प्रकार शालिवाहन से वीरसिंह शोभित हुए। इनके जन्म पर बहुत आनन्द मनाया गया। राजा शालिवाहन ने बहुत दान दिया। यथासमय पूरे विधि विधानपूर्वक जातकर्म,

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् १.७०

२. वही १.७१

३. राजा बिरसिंहदेव का जन्म सं. १५२४ के साल में - एकत्रा जमाबन्दी १

नामकरण आदि संस्कार किये गए। काव्य में कहा है कि जैसे-जैसे वीरसिंह का यौवन बढ़ने लगा, वैसे-वैसे पिता की लक्ष्मी बढ़ने लगी[१]।

बघेल नरेशों की परम्परा में वीरसिंह 'यथा नाम तथा गुणः' के अनुसार सबसे वीर तथा प्रतापी राजा हुए हैं। इन्हें अपने जीवन काल में बड़े-बड़े युद्ध लड़ने पड़े। सबसे पहले १४९५ ई. में २८ वर्ष की उम्र में यह अल्पवयस्क राजकुमार सिकन्दर लोदी के विरुद्ध बघेल सेनापति के रूप में युद्ध करने गया था[२]। इस समय राजा भैदचन्द्र का शासन था। पिता शालिवाहन भी जीवित थे। पर वीर वीरसिंह ने अपने उत्साह में स्वयं युद्धभूमि में जाना स्वीकार किया। कहते हैं इसने खान घाटी अथवा कठौली घाटीमें शाही सेना को रोका था। यद्यपि यह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुआ। असफलता को हाथ लगते देख वृद्ध भैदचन्द्र को भी संग्राम में आना पड़ा। पर वे भी अत्यन्त वृद्धवस्था के कारण इसका सामना नहीं कर सके तथा सरगुजा की ओर भागते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। इस समय सिकन्दर लोदी की सेना बान्धवगढ़ के उत्तर फफूँद या पपौंध (तहसील व्योहारी जि. शहडोल) तक पहुँच गई थी। इस भयंकर संग्रामं में वीरसिंह के सेनापतित्व निभाने के कारण बचपन से ही इनका प्रबल प्रताप प्रकट होता है।

प्रस्तुत काव्य में इस तथ्य का बार-बार संकेत दिया है। प्रथम सर्ग में वीरसिंह के वर्णन में कहा है कि यह नरेश असह्य तेज वाला था[३]। जैसे शक्तिशाली वायु से मिलकर अग्नि का तेज बढ़ जाता है, उसी प्रकार प्रदीप्त यौवन से मिलकर उसका तेज बढ़ता ही चला गया। इसी प्रकार अन्य वर्णनों में उसे पिनाकी या शिव के समान तेजस्वी बताया है[४]। उसे शक्तिशाली के साथ-साथ विद्या का भी प्रेमी बताया गया है। वहाँ यह भी कहा है कि विद्वान् जन उसके दरबार में अत्यन्त सुशोभित होते थे।

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् १.७७

२. तारीखे फरिश्ताः ब्रिग्सः ग्रन्थ १ पृष्ठ ४६२ अलबदाओनीः मुन्तखब उत्तबारीख ग्रन्थ १ पृष्ठ ४१७

३. वीरभानूदय काव्यम् १.८२

४. पिनाकितेजाः प्रथमावलेपैः वही २.३

वीरसिंह के सैनिक अभियान

विक्रमादित्यपुरकी ओर— इस काव्य में वीरसिंह के सैनिक अभियानों का विस्तृत विवरण मिलता है। द्वितीय सर्ग में कहा है कि वीरसिंह ने उचित समय पर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रस्थान किया[१]। वह तलवार लेकर विक्रमादित्यपुर पहुँचा[२]। यहाँ विक्रमादित्य परिहार की राजधानी नरो की ओर संकेत है। आज भी यह पहाड़ी सतना-रीवा मार्ग पर सज्जनपुर के पास अवस्थित है।

काव्य में कहा है कि इस समय विक्रमादित्य अपने चुने हुए योद्धा सैनिकों के साथ युद्ध के लिये बाहर आया। अत्यन्त घोर युद्ध हुआ। पैदल-पैदल सैनिकों से तथा घुड़सवार घुड़सवारों से भिड़ गए। हर जगह समुद्र के समान गर्जन हो रहा था। सैकड़ों सैनिक युद्ध में काम आए। विक्रमादित्य अपनी सेना को हारता देखकर स्वयं युद्धभूमि में आ गया[३]। उसने आकर वीरसिंह की सेना को मथ डाला। वह हाथी, घोड़ों से घिरा हुआ वीरसिंह की सेना पर भारी पड़ गया[४]।

अपनी सेना को हारता हुआ देखकर वीरसिंह गुस्से में आ गया। उसके महान् शौर्य तथा पराक्रम पूर्ण युद्ध से विक्रमादित्य की सेना जीत ली गई[५]। वीरसिंह ने नरो को जीतने के पश्चात् कुछ दिन वहाँ आराम से विश्राम किया। यहाँ चैत्य नरो का प्रयोग किया गया है[६]। इससे लगता है कि यहाँ बौद्धों के प्रभाव से चैत्य स्थापित थे। इस वर्णन से प्रकट है कि आधुनिक सतना की समीपवर्ती टमस नदी के पूर्ववर्ती रीवा की ओर उन्मुख भूभाग पर बघेलनरेशों में सर्वप्रथम वीरसिंह ने अधिकार स्थापित किया था।

गढ़ा की ओर—काव्य में कहा है कि इसके पश्चात् वीरसिंह ने अपने सैनिकों के साथ गढ़ापति पर विजय प्राप्त करने के लिये गढ़ा की ओर प्रस्थान किया[७]। गढ़ापति इस समय वीरसिंह का सैन्य अभियान सुनकर डर गया तथा

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् २.३१   २. वही २.४०   ३. वही २.४५

४. २.४६   ५. वही २.४८

६. जिता पुरं चैत्यनरोऽभिधानाम् - वही २.४९

७. गढ़ापतिं जेतुमगाच्च वीरः सेनावृतः शक्र इवादिवर्गम् - वही २.५६

वहाँ से भाग गया। तब कुछ काल तक वीर सिहं नर्मदा में स्नान करके नरो को वापस लौट आया।

यहाँ काव्य में जबलपुर में स्थित गढ़ा का वर्णन किया गया है, जो कि उस समय गोंड राज्य का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ का युवराज अमानदास था। इसके पिता अर्जुनदास ने कतिपय कारणों से निश्चय किया कि अमानदास को उत्तराधिकारी न बनाया जावे। इस पर अमानदास बहुत क्रोधित हुआ तथा उसने अपने पिता का वध कर डाला! यह घटना १५०५ ई. के आसपास की है।

इस घटना की सूचना वीरसिंह के पास भेजी गई जो कि उस समय सिकन्दर लोदी के दरबार में दिल्ली में थे। वीरसिंह तुरन्त सुल्तान से छुट्टी लेकर चल पड़े तथा गढ़ा पर आक्रमण कर दिया। अमानदास उनके आक्रमण का समाचार सुनकर डर कर भाग गया तथा पहाड़ों में छिप गया। बाद में वह वीरसिंह से मिला तथा रोकर अपने कुकृत्य के लिये क्षमा माँगी। तब वीरसिंह ने गढ़ा का राज्य उसे लौटा दिया था[१]। उल्लेखनीय है कि यह अमानदास सुप्रसिद्ध रानी दुर्गावती का श्वसुर हुआ था।

बान्धोगढ़ पर पुनः अधिकार—इसके पश्चात् काव्य में कहा है कि वीर वीरसिंह ने फूट डालकर कुरुवंशी नारायण नामक राजा से शासनाधिकार छीन लिया तथा उसके बान्धव नामक दुर्ग पर अधिकार कर लिया—

श्री बान्धवाख्यं स ततश्च दुर्गं
जग्राह भेदेन विनीतविश्वः।

— वीरभानूदयकाव्यम् १.२९

इस लेख के आधार पर पं. हीरानन्द शास्त्री ने यह माना है कि वीरसिंह ने सबसे पहले इस बान्धवगढ़ दुर्ग पर अधिकार करके इसे राजधानी बनाया तथा विशाल सेना के साथ सुखपूर्वक निवास किया[२]।

पर Rewa state Gazetteer के आधार पर परम्परा कहती है कि बघेल नरेश कर्णदेव के विवाह में रतनपुर के कलचुरि राजा सोमदत्त ने अपनी पुत्री पद्मकुँवरि के विवाह में बान्धवगढ़ को दहेज के रूप में प्रदान किया था।

---

१. Akabarnamah of Abul Fajal : Tr. H. Beveridge

२. Critical Analysis, page 27

यह बान्धवगढ़ आधुनिक शहडोल जिले में अवस्थित था। आज भी इस जिले में इस नाम से एक तहसील है। यहाँ उमरिया स्टेशन से उत्तर बान्धवगढ़ की पहाड़ी आज भी दिखती है।

मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार भी बान्धोगढ़ का किला वीरसिंह से पूर्ववर्ती बघेल नरेशों के आधिपत्य में रहा ध्वनित होता है। क्योंकि उन लेखों में बताया है कि सिकन्दर लोदी ने १४९९ ई. में शालिवाहन के राज्य के समय पुनः भट देश पर आक्रमण किया था। क्योंकि शालिवाहन ने अपनी लड़की का सिकन्दर के साथ विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। वह बान्धोगढ़ तक पहुँच गया था। उसे तोड़ने की बहुत कोशिश की थी। पर पूरी तरह सफल नहीं हो पाया था अन्त में सुल्तान को अपनी सेना हटा लेनी पड़ी थी। क्योंकि यह इस क्षेत्र का अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग था[१]। इससे पूर्व सिकन्दर ने १४९५ ई. में भैदचन्द्र के राज्यकाल में बान्धवगढ़ को लक्ष्य करके आक्रमण किया था, जब युवा राजकुमार वीरसिंह सेनापति बना था, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

इन प्रमाणों के आलोक में यह सही जान पड़ता है कि बान्धोगढ़ पर वीरसिंह के पूर्ववर्ती बघेल नरेशों का भी अधिकार वर्तमान था। इन सभी प्रमाणों के साक्ष्य में पं. जानकी प्रसाद चतुर्वेदी का यह कथन भी सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि वीरसिंह के समय बान्धोगढ़ अस्थायी रूप से पराधीन था। वीरसिंह ने इस पर पुनः अधिकार किया था। काव्य के उपर्युक्त श्लोक में लिखित 'जग्राह' शब्द के द्वारा बान्धोगढ़ पर वीरसिंह द्वारा पुनः अधिकार करने की सूचना प्रदान करना हो सकता है। (The capture of it by Vira Singh might have been only a recapture-note on critical analysis— page 27).

1. In 1498-99 Sikandar Lodi attacked it, being annoyed at Raja shalivahan but had to raise the siege at the cost of most of his valient soldiers - Elliot : the History of india as told by its own historians Vol. 4 p. 462
अब्दुल्ला तारीखी दाउदी - ई. डा. ग्रन्थ ४ पृष्ठ ४६२
अल बदाओनी ग्रन्थ १ पृष्ठ ४१७

इस बान्धोगढ़ पर पुनः अधिकार करने में वीरसिंह को कोई विशेष श्रम नहीं करना पड़ा। क्योंकि काव्य में कहा है कि वहाँ स्थित कुरुओं को अपने मामूली प्रयत्न से यम का अतिथि बनाया[१]। यहाँ से चलकर वह कुछ दिन गंगा तट में स्थित अलर्क नगर (आधुनिक अरैल) में सुशोभित हुआ[२]।

रत्नपुर पर विजय—काव्य के अनुसार इस बघेल नरेश के रत्नपुर के राजा से भी संघर्ष हुए थे। यह रत्नपुर आज बिलासपुर से १६ मील उत्तर रतनपुर गाँव के रूप में अवस्थित है। काव्य का कहना है कि रतनपुरके राजा ने पहले तो अपने दर्प से वीरसिंह का शासन नहीं माना। तब इसने संघर्ष करके रत्नपुर के राजा को हरा दिया तथा इस भयार्त से खूब कर वसूला[३]।

इसके पश्चात् इस बघेल नरेश ने डहार तथा सहजोर देश भी जीत लिया[४]। यह डहार शहडोल जिले में विन्ध्यपर्वत की कैमोर, केहुँजुआ आदि उपत्यकाओं से घिरा हुआ क्षेत्र है तथा सहजोर को वर्तमान शहडोल माना जाता है।

काव्य के अनुसार इसने भरवंशी राजाओं को भी परास्त किया। सतना के दक्षिण पश्चिम भार शिव सत्ता का अस्तित्व प्रमाणित है। बघेल वंश वर्णनम् आदि काव्य ग्रन्थों के अनुसार बघेल सत्ता का प्रारम्भ कलिंजर में भरवंशी क्षत्रिय राजाओं के सेवक के रूप में हुआ था। इस समय वीरसिंह ने शक्तिसम्पन्न होकर इन भर राजाओं को पूरी तरह पराजित कर दिया।

दिल्लीश्वर के साथ सन्धि—काव्य ने यह सूचना दी है कि पूर्ववर्ती नरेश दिल्लीश्वर के साथ सन्धि करते रहे थे। अतः उनका अनुसरण करते हुए वीरसिंह ने भी दिल्ली सम्राट् से सन्धि की—

दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम्—वीरभानूदयकाव्यम् २.६३

यह तथ्य अन्य इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित है। हम जानते हैं कि सिकन्दर लोदी ने १४९९ ई. के युद्ध से पूर्व शालिवाहन के पास

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् २.६१ २. वही २.६२

३. आदत्तवांस्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा भयार्तात्—काव्यम् २.६५

४. जितो डहार : सहजोरदेश : —काव्यम् २.६६

मैत्री का पत्र भेजा तथा इन्हें सहायक बनने के लिये राजी कर लिया था[१]।

वीरसिंह भी दिल्ली में सिकन्दर लोदी के दरबार में उपस्थित होते रहते थे। इतिहासकारों का कहना है कि एक बार १५०५ ई. के आस-पास जब वीरसिंह सिकन्दर लोदी के दरबार में उपस्थित होने गए थे तो उस समय उन्होंने गढ़ा के राजकुमार अमानदास को अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरभानु के संरक्षण में छोड़ा था।

इसके पश्चात् जब अमानदास ने अपने पिता का वध कर डाला तो इसकी सूचना वीरसिंह को दिल्ली दरबार में दी गई। क्योंकि उस समय वे नहीं थे[२]। इससे स्पष्ट है कि वीरसिंह ने शान्ति, समृद्धि के लिये दिल्ली सम्राटों से सन्धि की थी।

वीरसिंह की देशभक्ति—बघेल नरेशों में वीरसिंह एक ऐसा वीर तथा प्रतापी नरेश हुआ, जिसने लोदी तथा मुगल सम्राटों की महाशक्तियों से लोहा लिया तथा उनके सामने अपनी वीरता का सिक्का जमाया। उसने अपने अभियानों में देशभक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। यदि राजनय के अनुसार उसने दिल्ली सम्राटों से सन्धि भी की तो वह सम्मानजनक मित्रता थी। क्योंकि वे वीरसिंह के पराक्रम को भली प्रकार समझते थे तथा उनसे डरते भी थे। काव्य में स्पष्ट कहा है कि—

तस्माद् भियं प्राप स बब्बरोऽपि

—काव्यम् २.६७

अर्थात् बाबर भी उससे डरता था। इस परिस्थिति का कारण स्पष्ट है। बाबरनामा के वर्णन के अनुसार पानीपत के प्रथम युद्ध (१५२६ ई.) के पश्चात् वीरसिंह १६ मार्च १५२७ ई. में सीकरी के ५ कोस दूर कनवाहा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के पक्ष में लड़े थे। इस क्रम मे उन्होंने राणा सांगा को ४,००० घोड़ों की सहायता भी दी थी[३]। यद्यपि इस युद्ध में राणा

---

१. Elliot and Dowson : History of India Vol. 5, p. 94.

२. Akabarnamah of Abul Fazl . P. 30-33.

३. Erskine : Babar's memoirs P. 360

की विजय नहीं हो पाई। फिर भी इससे वीरसिंह की वीरता तथा देशभक्ति भली प्रकार प्रकट होती है।

अन्य इतिहासकारों के अनुसार इस युद्ध में वीरसिंह जैसे वीरों की वीरता के कारण बाबर को सांगा से हार खानी पड़ी थी। पर इस बीच में कुछ विश्वासघातियों के कारण सांगा को हार कर भागना पड़ा था[१]।

लड़ाई के नए हथियारों के अभाव के बाद भी राणा सांगा का जीतना अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। यह इस देश के इतिहास की विचित्रता तथा दुर्भाग्य है कि हिन्दी काव्यग्रन्थों में तो १४ वीं शताब्दी से ही बारूद, तोप तथा बन्दूक का खुल कर वर्णन होने लगा था[२]। पर अपने देश के किसी हिन्दू राजा ने इसके प्रयोग का कोई प्रयास नहीं किया। यह माना जाता है कि शिवाजी के पिता शाहजी ने विदेश से ये आग्नेयास्त्र खरीदे थे। पर मराठा साम्राज्य स्थापित करने वाले महान् सपूत शिवाजी ने भी इनके निर्माण के लिये फैक्ट्री आदि खोलने का कोई प्रयास नहीं किया। जबकि मुगल बादशाहों ने इस देश मे अपने आगमन के साथ ही इन हथियारों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। बादशाह अकबर के समय तो तोपखाने की काफी उन्नति हो चुकी थी। उस समय बहुत अच्छा वेतन देकर फिरंगी तोपचियों को नियुक्त किया गया था। पर अकबर के समकालीन रामचन्द्र बघेल ने तलवार के २१ भेदों तथा धनुष से बाणवर्षा का ही अभ्यास किया था[३]।

---

१. अन्त में उसे (बाबर को) राणा सांगा के साथ युद्ध करना पड़ा। कनुबा के मैदान में मुठभेड़ हुई और बाबर को सांगा से हार खानी पड़ी और सन्धि कर साँगा को कर देने का प्रण किया। पर इस बीच में कुछ विश्वासघातियों के कारण साँगा को हार खाकर भागना पड़ा और बाबर विजयी होकर लौट आया। इस विजय के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया गया था उसमें लाखों हिन्दू कत्ल किये गए थे और शाही तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी- आचार्य चतुरसेन : भारत में इस्लाम- पृ. ९२-९३ .

२. या तन की बारूद बनी है सत्तनाम की तोप।
मारा गोला भरम गढ़ टूटा, जीत लिया जमलोक- कबीर साहेब की शब्दावली भाग १ शब्द १७.

३. काव्य ८.७ तथा ८.१२ इत्यादि।

मुगलों की इस आसुरी शक्ति के सामने सामान्य की शक्ति की कैसे जीत हो सकती थी। इस विषम परिस्थिति में भी यदि राणा सांगा तथा वीरसिंह जैसे लोगों ने बाबर से लोहा लेने का प्रयास किया तो उसे बहुमूल्य देशभक्ति की भावना से प्रेरित ही कहा जावेगा। प्रस्तुत काव्य में भी वीरसिंह को तलवार तथा धनुष बाण चलाने वाला ही बताया गया है[१]। बाबर तथा हुमायूं ने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार करने के पश्चात् आसुरी शक्ति के बल पर जिस तेजी से ग्वालियर तथा जौनपुर पर अधिकार किया था, उसे देखते हुए यह सरल तथा स्वाभाविक लगता है कि राजा वीरसिंह जैसे लोग विरोध ही नहीं करते। फिर भी वीरसिंह का युद्ध करना तथा जीतना उनकी वीरता का एक नमूना है।

पर जैसा कि ऊपर कहा गया कि राणा सांगा की सेना को बाद में हारना पड़ा तथा वीरसिंह का भट देश भी पराजित हो गया। पर बाबर वीरसिंह की वीरता से बहुत प्रभावित हुआ। अतः उसने वीरसिंह से सम्मानजनक सन्धि की। प्रस्तुत काव्य में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

श्री वीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण

—वीरभानूदयकाव्यम् १२.२२

अर्थात् वीरसिंह का बाबर के साथ अच्छा भातृभाव हो गया था। इसी प्रभाव के कारण बाबर ने बाद में अपने सूबों के विभाजन के समय भट देश को राजा वीरसिंह के लिये नानकार जागीर (Maintenance Grant) के रूप में लिख दिया था। यह तथ्य मुस्लिम इतिहासकारों[२] तथा State Garetteer के पृ. १४ के वर्णन से भी मेल खाता है।

इन घटनाओं का उपसंहार करते हुए काव्य में लिखा है कि बघेल रूपी कमलों के प्रकाशक इस राजा रूपी सूर्य के रहते कोई अनीति नहीं कर सका था[३]।

---

१. खड्गी—वीरभानूदयकाव्यम् २.४०। धन्वी-वीरभानूदयाकाव्यम् २.४५

२. Ain-i-Akabari of Abul Fazl. Tr. Blochman P. 406

३. वीरभानूदयकाव्यम् २.६९

वीरसिंह की रानी सुकुमार देवी से वीरभानु तथा यामिनीभानु उत्पन्न हुए। ये भाई के आदेश पर चलते थे[१]। एकन्ना में इन्हें मैहर का बताया गया है।[२] क्योंकि इन्हें सोहागपुर तथा मैहर का इलाका बंटवारे में मिला था।

इस प्रकार शासन करते हुए वीरसिंह ने अपनी अत्यन्त वृद्धावस्था में गंगा जमुना संगम के जल में शरीर त्याग कर दिया[३]। काव्य से यह ध्वनित होता है कि वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म से पूर्व वीरसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। क्योंकि यहां एक प्रसंग में कहा है कि वीरभानु की गर्भवती रानी राजमती स्वप्न में वीरसिंह को वैकुण्ठ से आकर गर्भस्थ शिशु को उपदेश देते हुए देखती है[४]।

वीरभानु

जन्म : संवत् १५४३ अथवा १४८६ मृत्यु : १५५५ ई.
शासन - १५४० ई. से १५५५ ई. तक

शेरशाह सूरी तथा हुमायूं के समकालीन
राज्य सीमा-गढ़ा (जबलपुर) से अरैल (प्रयाग) तक

यहां से प्रस्तुत काव्य के नायक का वर्णन प्रारम्भ होता है। वीरसिंह की पतिव्रता पत्नी सुकुमार देवी से संवत् १५४३ को वीरभानु का जन्म हुआ। यह जन्मतिथि जमाबन्दियों में स्पष्टतः कही गयी है[५]। प्रस्तुत काव्य से भी यह जन्मतिथि प्रमाणित है। क्योंकि इस काव्य १.९९ में वीरभानु के जन्म के पश्चात् शालिवाहन की मृत्यु का विवरण है। शालिवाहन की मृत्यु १५०० ई. में हुई थी, यह परिज्ञात है। अतः निश्चय ही शालिवाहन की मृत्यु से पूर्व १४८६ ई. में वीरभानु का जन्म हुआ होगा।

इस शिशु के जन्म के समय वीरसिंह ने बड़ी प्रसन्नता से दान आदि देते हुए जातकर्म आदि संस्कार कराए। यह शिशु चन्द्रोदय से समुद्र के समान तथा शुक्ल पक्ष से चन्द्रमा की वृद्धि के समान निरन्तर बढ़ने लगा[६]।

---

१. वही १.९३ २. लहुरे जमुनीभानदेव मैहर के-एकत्रा जमाबन्दी १
३. वही २.७३ ४. वही ७.४०
५. राजा वीरभानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल- एकत्रा जमाबन्दी १।
६. वीरभानूदयकाव्यम् १.९२

समयानुसार यौवन प्राप्त करने पर वीरभानु ने हैहय वंश में उत्पन्न वशंवदा उदारशीला गोसाइनी से विवाह किया। काव्य के प्रथम सर्ग के अन्त में यह सूचना दी गई है[१]।

पर सप्तम सर्ग के प्रारम्भ में यह बताया है कि वीरभानु की प्रधान पत्नी राजमती (रायमती) थीं, जो कि दिव्य सौन्दर्य शोभा वाली थीं। वे राजा की तथा अन्य धर्मपत्नियों के लिये मनोहारिणी थीं[२]।

काव्य के तीसरे सर्ग के प्रारम्भ में वीरसिंह की अन्त्येष्टि के विवरण के पश्चात् पांचवें सर्ग से वीरभानु के अभिषेक तथा उनके राज्य का विस्तार से वर्णन है। उनका अभिषेक बहुत धूमधाम से हुआ था। अनेक अन्य अधीन राजाओं ने उन्हें उपहार दिये। अपने राज्यकाल में वीरभानु ने कभी झूठ नहीं बोला, न कभी हठ किया, न ही कभी कठोर वाणी बोली। इस प्रकार उन्होंने राजा युधिष्ठिर के समान आचरण किया[३]।

उसने कभी सत्पुरुषों को दूर नहीं रखा तथा कभी खराब लोगों को पास नहीं आने दिया[४]। उसने दुर्ग में राज्य के समस्त अंग निहित हैं, यह सोचकर दुर्ग पर विशेष ध्यान दिया[५]। साथ ही यह समझते हुए कि चंचल चित्त वालों पर श्री प्राप्त नहीं होती, उसने उसकी वृद्धि में पूरी तरह मन लगाया[६]। इसने इसके लिये हिसाब करने वालों से प्रतिदिन आय व्यय की चर्चा की[७]।

वीरभानु आतिथ्यकर्म में भी दक्ष था। अतः अन्य देशों से आए हुए लोगों का पूरा सत्कार करता था[८]। उसने सेना को पुनः सुसज्जित किया तथा घोड़ों पर विजय की निर्भरता जान कर उन्हें भली प्रकार तैयार किया[९]। उसने गाय तथा ब्राह्मणों की सुरक्षा के लिये पूरी व्यवस्था की[१०]। वह कोश की सुरक्षा तथा दण्ड की व्यवस्था के लिये एक साथ प्रयत्नशील हुआ[११]। कोश की वृद्धि के लिये उसने व्यापार-राजमार्गों की अच्छी व्यवस्था की[१२]। यह राजा

---

१. वही १.९८ २. वही ७.१ ३. वही ५.४१
४. वही ५.४४ ५. वही ५.४८ ६. ५.५१
७. ५.५९ ८. वीरभानूदयकाव्यम् ५.६३ ९. वही ५.६५
१०. वही ५.६७ ११. वही ५.७४ १२. वही ५.७८

इस प्रकार वित्त की सुरक्षा के साथ २ उसका उपार्जन करना भी जानता था[१]। दोनों लोकों में कल्याण की इच्छा करने वाले ऋण की व्यवस्था नहीं करते। अतः इस राजा ने कभी ऋण लेना ही नहीं चाहा, न ही कभी धन का गलत कार्यों में व्यय होने दिया[२]।

यह भूपति जिस कार्य को प्रारम्भ करता था, उसका फल प्राप्त हुए बिना उसे छोड़ता नहीं था[३]। जब तक किसी कार्य पर राजा ध्यान न दे तब तक वह कार्य पूरी तरह फलवान् नहीं हो पाता, यह सोचते हुए वह सब कार्यों के प्रति प्रयत्नपूर्वक जागरूक रहता था[४]।

यह जितेन्द्रिय राजा यम-नियमों का पालन करता था[५]। यह प्रतिदिन अपने प्रमुख मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करता था[६]। धन-वृद्धि, रिपुहानि यह सब प्रजा के उपकार द्वारा ही होती है, यह सोचकर प्रजा का सदा कल्याण करता था[७]। यदि किसी देश में आंसू गिरें तो वह राजा के लिये शुभ नहीं है, यह सोचकर अच्छे मार्ग पर ध्यान देता था[८]।

उस राजा ने पुण्य के लिये देवालयों तथा जलाशयों की सुरक्षा व्यवस्था की[९]। जो राजा अन्याय के मार्ग पर चले उनका कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ, अतः यह सदा न्याय मार्ग का अनुसरण करता था[१०]।

जो लोग घूंस लेकर लोगों का विनाश करते हैं, उनकी श्री को राजा ने छीन लिया। जैसे सूर्य अपनी किरण रूपी दण्ड से भूमि से पानी को खींच लेता है[११]।

रत्नपुर पर विजय—काव्य ने यह सूचना दी है कि वीरभानु ने अपनी महारानी राजमती की इच्छानुसार रत्नपुर के लिये अपना सैन्य अभियान प्रारम्भ कर दिया था। उस समय रानी राजमती गर्भिणी थीं। वीरभानु ने प्रसन्न होकर उनका दोहद या गर्भिणी की इच्छा पूछी। इस पर राजमती ने कहा कि रत्नपुर

---

१. वही ५.८४
२. वही ५.८६
३. वही ५.९२
४. वही ५.९३
५. वही ५.९८
६. वही ५.१०६
७. वही ५.१११
८. वही ५.११३
९. वही ५.११८
१० वही ५.१२१
११. वीरभानूदयकाव्यम् ५.१४१

में मेरे पिता दादूराय अपने शत्रुओं को नहीं जीत पाते हैं तथा यों ही राजनीति के कार्यों को छोड़कर पड़े रहते है। अतः आप रत्नपुर के राजा मेरे पिता को जीतिये। तब वीरभानु ने रत्नपुर पर अधिकार के लिये सैन्य अभियान का उपक्रम किया। काव्य में कहा है कि राजा के प्रयाण करने पर रानी भी कुछ दूर पीछे २ चली तथा काफी मना करने पर वापस लौटी[१]।

इस प्रकार इस बार रत्नपुर की ही बेटी ने रत्नपुर पर आक्रमण करा दिय!! इससे पूर्व वीरसिंह भी इस पर विजय प्राप्त कर चुके थे। तब से यहाँ के राजाओं के साथ बघेलनरेशों की मित्रता चली आ रही थी। तभी वहां के राजा दादूराय ने अपनी पुत्री वीरभानु को ब्याह दी थी। पर स्वयं राजमती के उकसाने पर वीरभानु ने उस पर आक्रमण किया तथा अपने अधिकार में कर लिया। इसके अलावा वीरभानु ने अपनी ओर से शत्रुओं पर कोई विशेष आक्रमण नहीं किये थे। प्रस्तुत काव्य के अनुसार श्री वीरसिंह ने ही प्रायः सभी शत्रुओं को जीत लिया था। अतः वीरभानु को अपनी ओर से आक्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं हुई[२]।।

मुगल सम्राटों के साथ सन्धि—काव्य ने यह सूचना दी है कि वीरभानु ने म्लेच्छ सम्राटों के साथ साम का प्रयोग करते हुए करोड़ों संख्या वाली लक्ष्मी का संग्रह किया तथा स्थिर वृद्धि को प्राप्त किया[३]। इस वचन से वीरभानु की तत्कालीन दिल्ली सम्राट् हुमायूँ से मित्रता प्रकट होती है।

काव्य के अन्य प्रसंगों में यह मित्रता बहुत स्पष्ट प्रकट की गयी है। इसके १२ वें सर्ग में कहा है कि जिस प्रकार श्री वीरसिंह का बाबर के साथ सुभातृभाव था, उसी प्रकार वीरभानु का भी समकालीन सम्राट् से बन्धु भाव था[४]। वीरसिंह से बाबर की मित्रता का वर्णन ऊपर हो चुका है। उसी परम्परा का पालन करते हुए वीरभानु की भी हुमायूँ से मित्रता रही हो यह सर्वथा स्वाभाविक है।

---

१. वही ७.६९-७६ २. वही ५.१५५

३. *म्लेच्छाधिपेभ्योऽपि स सामयोगात् दण्डोपयोगादिव वृद्धिमद्भ्यः*
संगृह्य लक्ष्मीमपि कोटिसंख्यां स्थिरोदयीं वृद्धिमतीव यातः।
- काव्यम् ५.१४५

४. वही १२.२२

मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार इस मित्रता का कारण केवल पिछली परम्परा ही नहीं थी। अपितु वीरभानु द्वारा की गई सहायता भी इसका कारण थी। जैसा कि बेगम गुलबदन ने २७ जून १५३९ ई. की घटना के विषय में हुमायूँनामा में लिखा है[१]—

'उन्हें बिना सूचना के वहां रुकना पड़ा, जब शेरखाँ उन पर टूट पड़ा। सेना हार गई। बादशाह के हाथ में जख्म हो गया। तीन दिन तक वे चुनार में पड़े रहे। फिर अरैल पहुँचे। जब बादशाह नदी के किनारे पहुँचे तो घबड़ा कर बोले - बिना नावों के इसे कैसे पार करें। तब राजा अपने ५-६ घुड़सवारों के साथ आया तथा बादशाह को घाट की तरफ ले गया। क्योंकि उसके सैनिक ४-५ दिन से बिना भोजन पानी के थे, अतः राजा ने बाजार लगवा दिया। इस प्रकार सैनिक कुछ दिन सुख से रह सकें तथा घोड़ों ने भी विश्राम पाया। संक्षेपतः राजा ने समुचित तथा कर्तव्यनिष्ठ सेवा की। बाद में बादशाह कर्रा कालपी होते हुए आगरा पहुँचे'।

इस वर्णन में बेगम ने राजा का नाम छोड़ दिया है। पर हुमायूँ के Ewer-Bearer जौहार ने पीरभान नाम लिखा है जो कि स्पष्टतः वीरभानु है। उसके विवरण के अनुसार पूरब से मीर फरीद गौर तथा सामने से शाह मोहम्मद अफगान बादशाह को आगरा की यात्रा से रोकने को तैयार खड़े थे। तब राजा पीरभान ने आकर बादशाह से कहा यदि वे अनुमति दें तो वह इन सेनाओं को रोके तथा उनको आगे जाने की व्यवस्था करे[२]।

कनिंघम महोदय ने भी अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह सूचना दी है कि उस समय भगदंड़ में बादशाह हुमायूँ की एक बेगम छूट गई थी। वीरभानु ने उसे बहन कह कर शरण दी थी[३]।

---

१. Princess Gulbadan : Humayunama translated by Mrs. Beveridge Page 135-36

२. Jauhar : Memoirs of Humayun Stewart's translation-page 18
इस प्रसंग को Erskine ने भी अपने ग्रन्थ History of Babar and Humayun के पृ. १७४ में उद्धृत किया है तथा वहाँ पीरभान को अरैल का राजा बताया है।

३. Archaeological Survey Reports of India. A Cunningham Page 109

स्पष्टतः इन्हीं सब कारणों से वीरभानु की हुमायूँ से अच्छी मित्रता थी। साथ ही ये दोनों सुल्तान शेरशाह सूरी के कट्टर शत्रु थे। अतः इन दोनों में आपसी मित्रता स्वाभाविक है। शेरशाह इन दोनों की मित्रता को सहन नहीं कर पाया था। अतः उसने वीरभानु पर आक्रमण किया था। वीरभानु को कालिंजर के किले में शरण लेनी पड़ी थी[१]। इसी समय शेरशाह ने अपने बेटे जलाल खाँ को रेवाँचल पर आक्रमण के लिंये भेजा था। ज्ञातव्य है इसने ही सर्वप्रथम रीवा में गढ़ी का निर्माण तथा दुर्ग की आधार शिला रखी थी। इस मित्रता को काव्य में इस प्रकार लिखा है कि—

भ्रात्रीकृतस्तेन हि वीरभानुः।

—काव्यम् १२।२१

अर्थात् हुमायूँ ने वीरभानुं को भाई बनाया। इसलिये बादशाह ने वीरभद्र के जन्म के समय वीरभानु के पास उपहार भेजा था। जिसका वर्णन वीरभद्र के प्रसंग में किया जावेगा।

रामचन्द्र

जन्म[२] : संवत् १५९२ अर्थात् १५३५ ई. मृत्यु : १५९२ ई.

युवराज्याभिषेक[३] : संवत् १६०८ (१५५१ ई.)

शासन काल : १५५५ ई. से १५९२ ई. तक

हुमायूँ तथा अकबर के समकालीन

राज्य सीमा—गंगा जमुना के दोआब से अमरकंटक तक (काव्य १०.७)

काव्य के सातवें सर्ग में रानी राजमती से रामचन्द्र के जन्म का वर्णन है। माता राजमती अपने शिशु के गर्भस्थ होने पर स्वप्न में अनेक अवतारों का दर्शन करती हैं। उन्होंने वैकुण्ठभवन से आये हुए श्री वीरसिंह को देखा। वीरसिंह ने गर्भस्थ शिशु को सम्राट् के चिह्नों वाला जाना तथा उसके भावी चक्रवर्ती होने का आशीर्वाद दिया[४]।

---

१. क़ानूनगो (अनु. मथुरा लाल शर्मा) शेरशाह और उसका काल पृ. २२०-२१

२. राजा रामचन्द्रदेव का जन्म सं. १५९२ के साल-एकत्रा जमाबन्दी १

३. सं. १६०८ के राज्याभिषेक-एकत्रा जमाबन्दी १ ४. वीरभानूदयकाव्यम् ७.४०

माता राजमती ने अन्य अवतारों के साथ साथ हरि को कल्कि अवतार के रूप में भी देखा। उन्हें लगा कि वे स्वयं दुष्ट म्लेच्छों के विनाश के लिये उनकी कोख में आये हैं[१]। इससे तत्कालीन मुगल सम्राटों के साथ संघर्ष तथा उनपर विजय पाने की प्रबल अभिलाषा की सूचना प्राप्त होती है।

राजा वीरभानु भी गर्भस्थ शिशु के चक्रवर्ती लक्षण को जानकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने रानी राजमती से कहा कि मैं धन्य हो गया। क्योंकि स्वयं हरि का अंश कल्कि रूप में तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट हुआ है[२]।

रामचन्द्र का जन्मोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। समयानुसार सभी संस्कार किये गये। युवावस्था की ओर अग्रसर होने पर उसने श्रेष्ठ मन्त्री गणेश राउत के निर्देशन में धनुर्विद्या आदि सीखना प्रारम्भ किया।

कवि का मानना है कि उसने अश्वशिक्षा के द्वारा नलता (राजा नल से समानता) तथा अतुल प्रताप के द्वारा अनलता (वायु से तुल्यता प्राप्त की[३])। इस प्रकार वह सभी विद्याओं में पारंगत हो गया।

समयानुसार गौर देश के कीर्तिसिंह की पौत्री तथा माधव सिंह की पुत्री सदा यश देने वाली यशोदा के साथ रामचन्द्र का विवाह हुआ। माधवसिंह ने अपने बेटे रत्नसिंह को कुछ दूर तक साथ भेजा। वह भी बहिन के प्रेमवश मार्ग में कुछ दिन साथ रहा। फिर राजा वीरभानु ने आदर के साथ उसे वापस लौटा दिया[४]।

काव्य में बताया है कि विवाह के पश्चात् शीघ्र ही श्री वीरभानु ने रामचन्द्र को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया[५]। कवि ने उस समय की बहुत प्रशंसा की है। उसका कहना है कि उस समय धरती बिना जोते बोए अन्न प्रदान करने लगी थी तथा मेघ समय पर वर्षा करने लगे थे[६]।

रामचन्द्र का शासन प्रबन्ध— कवि ने दसवें सर्ग में रामचन्द्र के शासन की विस्तार से चर्चा की है। यहां ऐसा लगता है कि कवि ने शासन की प्रशंसा में अपनी कवित्व शक्ति का पूरा उपयोग कर डाला है। इसके वर्णन में अतिरंजना का जैसा उपयोग है, वैसा ग्रन्थ के अन्य भाग में कहीं नहीं है।

१. वही ७.२३ २. वही ७.६४ ३. वीरभानूदयकाव्यम् ८.२४
४. वही ९.३७-३९ ५. वही ९.४२ ६. वही ९.४६

क़वि का कहना है कि यों तो सूर्य कमलिनियों को प्रसन्न करने के लिये उदित होता है। पर रामचन्द्र के प्रताप से ये किरणें तालाब के अन्तिम तल तक प्रवेश करती थीं[१]। इसी प्रकार—प्रतिदिन रामचन्द्र के प्रताप से ही सर्वत्र दिन फैल जाया करता था। फिर भी उस समय सूर्योदय केवल इसलिये होता था ताकि लोगों में पूर्व दिशा के प्रति भ्रान्ति या सन्देह को दूर किया जा सके[२]। रामचन्द्र ने अपने तीव्र प्रताप से इस लौकिक अग्नि को जीत लिया था या अभिभूत कर दिया था। साथ ही अपने सत्कार्य रूपी जल से इस अग्नि को तेजोविहीन कर दिया था। इसलिये अब रामचन्द्र के समक्ष यह अग्नि 'कृष्णवर्त्मा' के रूप में इस धरती में रहने लगी थी। अग्नि का एक नाम कृष्णवर्त्मा इसलिये है क्योंकि इससे उत्पन्न धुएँ के उपर जाने का रास्ता काला होता है। कवि का कहना है कि रामचन्द्र के प्रताप से अग्नि के तेजोविहीन हो जाने के कारण ही इसका रास्ता काला हो गया था[३]!!! उसकी असाधारण गम्भीरता ने समुद्र की गम्भीरता को भी अपने वश में कर लिया था। ऐसा लगता था कि उसने धैर्य या स्थिरता को सुमेरु पर्वत से प्राप्त किया था तथा उसके ऐश्वर्य को इन्द्र भी प्राप्त नहीं कर सकता था[४]।

रामचन्द्र की दानशीलता—प्रस्तुत बघेल नरेश के इस गुण की भी यहां सर्वाधिक प्रशंसा तथा अत्युक्ति का भरपूर उपयोग किया गया है। कवि

---

१. यस्य प्रतापैरुपतप्तकल्पो नीरावगाहं चरमाम्बुराशेः।
करोति नित्यं नलिनीवनानां मुदे समुद्यन्नपि चण्डभानुः।

— काव्यम् १०.५

२. यस्य प्रतापैस्तमसो विनाशादितस्ततो वासरवासनायाम्।
प्राची दिशो भ्रान्ति निकृन्तनाय भानुर्नहि स्याद्यदि नोदितः स्यात्

— काव्यम् १०.६

३. निरन्तरं सत्पथवारिणाऽसौ तीव्रप्रतापेन जितः कृशानुः।
किमन्यथाऽद्यापि च यत्समक्षं स कृष्णवर्त्मा भुवने विभाति।

— काव्यम् १०.९

४. स्थैर्यं सुमेरोरचलाद् गृहीतं विभाति तस्येव महाशयस्य।
ऐश्वर्यमस्य क्षितिवासवस्य न वासवेनापि च लभ्यते तत्।

— १०.१२

का कहना है कि इसकी उदारता की किसी अन्य से समानता नहीं बताई जा सकती। जैसे सर्वोत्तम श्री जगन्नाथ का कोई अन्य उपमान नहीं हो सकता[१]। इस राजा ने संकल्प करके ब्राह्मणों को इतनी जमीन दी थी, जितनी महाशक्ति वाले राजाधिराज के पास भी उतनी जमीन नहीं होगी[२]। दानशीलता की प्रशंसा के क्रम में काव्यशास्त्र की सभी अतिरंजनाएँ इस श्लोक में टूट गई प्रतीत होती हैं-उसने याचकों को जितने धन दिये, उतने धरती में धूलिकण नहीं हैं। यदि उन सभी धनों को मिलाया जाय तो सोने के सैकड़ों पहाड़ खड़े हो जाएँगे[३]!!!

कवि ने आगे लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य एक ही है, इन्द्र दूसरा नहीं है, धनेश्वर कुबेर भी एक ही है। उसी प्रकार जिन विशेषणों से युक्त वह राजा था, वैसा कोई दूसरा राजा नहीं था[४]। उस व्यक्ति का जन्म ही असम्भव है जो समस्त राजाओं के विभूषण धरती के इन्द्र श्री रामचन्द्र की कृपा का याचक नहीं बन सका[५]। कवि ने एक अन्य श्लोक में अनूठेपन को दिखाने के लिये अनन्वय अलंकार का उपयोग करते हुए कहा है कि जिस प्रकार समुद्र केवल समुद्र के समान सुशोभित होता है, यह नभोमण्डल केवल नभोमण्डल के समान ही है। उसी प्रकार रामचन्द्र राम के समान ही अलंकृत होते हैं[६]। अर्थात् उनका अन्य कोई उपमान नहीं है।

राजा रामचन्द्र की यह दानशीलता अन्य इतिहासग्रन्थों से भी प्रमाणित हैं। पूर्वोक्त श्लोक में जो ब्राह्मणों को भूमिदान की बात कही गयी है उसका

---

१. औदार्यमेतस्य महातलेऽस्मिन् नान्यस्य दातुः समतामुपैति।
सर्वोत्तमः श्रीजगदेकनाथः केनोपमेयो भविता जनेन - - - काव्यम् १०.१४

२. संकल्पपूर्वं नृपपुंगवेन द्विजाय दत्ता खलु यावती भूः।
राजाधिराजस्य महोर्जितस्य न तावती कस्यचिदस्ति भूमिः।
—काव्यम् १०.१९

३. धनानि यावन्ति स याचकेभ्यो ददौ न तावन्ति रजांसि भूमेः।
स्तोमीकृतं चेत् कुतुकादशेषैः शतं शतं स्यात् कनकाचलस्य- काव्यम् १०.२०

४. वीरभानूदयकाव्यम् १०.२१ ५. वही १०.२४

६. पयोधिराभाति यथा पयोधिरिदं विहायोऽस्ति यथा विहायः।
दाने महत्त्वे महनीयमाने रामो यथा राजति रामचन्द्रः-वही १०.२५

समर्थन इलियट के इस विवरण से होता है कि राजा राम बघेल ने ब्राह्मणो को अरैल के ३६० गाँव दान में दिये थे[१]। अन्य संस्कृत कवियों ने भी रामचन्द्र की दानशीलता की भरपूर प्रशंसा की है।

उदाहरण के लिये पद्यवेणी में उद्धृत गोविन्द भट्ट अथवा अकबरी कालिदास का यह श्लोक उद्धृत किया जा सकता है—

राम त्वद्दत्तमत्तेभकुम्भनिःसरदम्बुभिः।
दिक्षु भिक्षुगृहद्वारि वारां निधिरुदञ्चति।

—पद्यवेणी पृ. ३४

अर्थात् हे रामचन्द्र! तुम्हारे द्वारा दिये गए मतवाले हाथियों के मस्तक से होकर बहने वाले मदजल से सभी दिशाओं में याचकों के घरों में समुद्र उमड़ आया है!!

सचमुच काव्य की अतिरंजना का यह आवेश दानशीलता के अत्यधिक प्रभाव से ही उमड़ा होगा!!

इस प्रकार इस बघेल नरेश ने कवियों तथा विद्वानों का आदर करते हुए उन्हें अपने दान तथा सम्मान से उपकृत किया था। वह विद्या के श्रम को पहचानता था तथा इसीलिये उसने अनेक विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया था। अनेक कवियों ने उसके इन गुणों की भरपूर प्रशंसा की है। विद्वानों का विचार है कि भारत के मध्ययुग में जितनी अधिक प्रशंसा वीरभानु तथा रामचन्द्र की हुई है, उतनी अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकी है[२]। यद्यपि इस समय

---

१. Supplementary glossary- Notes on the `Chaurasis', Elliot Vol. II page 56

२. The anthologies alone contain more than 50 verses in parise of Ram Chandra and probably, no ruler of mediaeval India has been so highly praised by our Sanskrit poets as this scion of the Baghel dynesty-Introduction of Ramchandra yashah Prabandha by Dr. J.B. Chaudhary page 6

इनकी प्रशंसा में अनेक कवियों की रचनाएँ लुप्त हो चुकी हैं। उदाहरण के लिये वीरभानु के राज्याश्रित कवि भानुदत्त या भानुकर ने इनकी प्रशंसा में काव्य लिखा था। पर इसके कुछ ही गिने चुने श्लोक पद्यवेणी में प्राप्त हो सके हैं[१]।

रामचन्द्र के राज्याश्रम में तानसेन—राजा रामचन्द्र बघेल का दरबार संगीत के महाविद्वान् तानसेन से सुशोभित होता था। राजा इनका बहुत सम्मान करते थे तथा इनके संगीत से प्रसन्न होकर बहुत दान करते थे। काव्य के अनुसार गन्धर्वविद्या के इस कलाविद् को प्रत्येक ध्रुपद राग पर राजा ने चन्द्रमा की ठप्पा वाली १ करोड़ टंका प्रदान की थी[२]। यह राजा तानसेन द्वारा निकाली गयी रागों के मध्य आठों प्रहर बिताता था। वह उन रागों से वर्षा आदि कालों को बिताते हुए निमेष मात्र के लिये भी दूर नहीं गया[३]। भूत, भविष्य, वर्तमान में भी इस प्रकार का संगीतज्ञ नहीं है[४]। सचमुच इस प्रकार के वर्णन से तानसेन के संगीत की मोहकता की कल्पना की जा सकती है।

धीरे धीरे तानसेन के मधुर संगीत की अनुगूँज दूर दूर तक फैल गई। इसकी बड़ाई सुनकर बादशाह अकबर ने इसे अपने दरबार में बुलाना चाहा। अबुलफजल ने लिखा है कि अकबर ने अपने शासन के पाँचवें वर्ष अर्थात् १५६१ ई: में तानसेन को दरबार में बुलाने के लिये अपने खास सरदार जलाल खाँ कुर्ची को रामचन्द्र बघेल के दरबार में बान्धोगढ़ भेजा था। तब बड़ी अनिच्छा से तानसेन को वहां भेजना पड़ा था[५]।

अकबर के दरबार में भी तानसेन ने सबको बहुत अधिक प्रभावित किया। मुस्लिम इतिहासकारों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। अबुलफजल ने प्रस्तुत काव्य की ही भावना के समान कहा है कि उसके समान गायक पिछले हजार

---

१. इनका एक गिना चुना श्लोक प्रस्तुत है—
लंकाधामनि वीरभानुनृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापोदयं
प्रत्यागारमधीरनीरजदृशो भूयो हुताशभ्रमात्।
क्षुभ्यद् वाणिविधूत पाणिविगलन्मुक्तामणिप्रस्खलत्
वाष्पश्रेणिविलोलवेणिदयितं कण्ठस्थले बिभ्रति-पद्यवेणी श्लोक ६८

२. काव्यम् १०.२६ ३. वही १०.२७ ४. वही १०.२९

५. Ain-i-Akabari of Abul Fazl page 475-76

वर्ष में कहीं नहीं हुआ[१]। इसी प्रकार जहाँगीरनामा में भी लिखा है कि दरअसल उसके सरीखा गाने वाला किसी वक्त किसी जमाने में नहीं हुआ[२]।

प्रस्तुत काव्य में ऊपर कही गई १ करोड़ टंका प्रदान करने वाली बात को अतिरंजित माना जा सकता है। पर यह ध्यान देने योग्य है कि मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इसी प्रकार प्रभावित होकर ऐसा ही वर्णन किया है। बदाओनी ने कहा है कि यह रामचन्द्र शाही दरियादिली में बेमिसाल था। बहुत सी चीजों के साथ उसने मिंया तानसेन गवैये को एक दिन में एक करोड़ जर दिया। मिंया राजा को छोड़ना नहीं चाहता था[३]।

इन सब वर्णनों से प्रकट होता है कि जहाँ तानसेन का संगीत अद्भुत था, वहीं राजा रामचन्द्र की दानशीलता की भी कोई उपमा नहीं हो सकती।

सुल्तान मुहम्मद अदाली को शरण प्रदान—काव्य के एक महत्वपूर्ण उल्लेख के अनुसार सुल्तान मुहम्मद सैदाली स्वयं रामचन्द्र की शरण में आया था तथा बघेल नरेश ने इसे शरण प्रदान की थी। श्लोक इस प्रकार है—

सईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत्
स्वयं सुरत्राणमुहम्मदादिः।

—काव्य १०.१३

शास्त्री जी का मानना है कि यहां भ्रान्तिवश सूरादिली के स्थान पर सईदिली लिखा गया है। यह सूरादिली स्पष्टतः मुस्लिम इतिहासकारों के सूरअदाली के समकक्ष है। यह घटना उनसे प्रभावित भी है। बदाओनी ने लिखा है कि सुल्तान मुहम्मद सूर अदाली अन्ततः इब्राहिम सूर का सामना नहीं कर सका तथा ग्वालियर से भट की ओर भागा तथा वहां से चुनार पहुंचा। यहां स्पष्टतः भट देश से गहोरा ही अभिप्रेत है। अर्स्किन ने भी इस घटना का समर्थन किया है[४]। यद्यपि उसने भट के स्थान पर पन्ना का उल्लेख किया है।

---

१. वही पृ. ६१२

२. Jahangirnama : H. Beveredge 1909, page 413.

३. अल बदाओनी पृष्ठ ५३८

४. History of Babar and Humayun : Erskine Vol. 2, Page 494

इतिहासकारों के अनुसार इब्राहीम के द्वारा अदाली १५५५ ई. में परास्त किया गया था। Imperial Gazetteer के अनुसार रामचन्द्र ने १५५५ ई. से शासन आरम्भ किया था। अतः स्पष्टतः शरण-प्रदान की यह घटना रामचन्द्र के शासन काल के प्रारम्भ में हुई थी।

रामचन्द्र की वीरता—रामचन्द्र यौवराज्य प्राप्त करने के पश्चात् सर्वत्र बहुत प्रशंसित हुए। उनका प्रताप अत्यन्त तीव्र था तथा वह शीघ्र ही चारों ओर फैलने लगा था[१]।

कवि के इस वचन में सम्भवतः रामचन्द्र की एक उल्लेखनीय विजय की ओर संकेत है। इतिहासकारों के अनुसार १५५५ ई. में अफगान के इब्राहिम शाह सूर ने रामचन्द्र के किले पर आक्रमण किया था। रामचन्द्र ने अप्रतिम वीरता दिखाते हुए सूर को परास्त किया तथा इसे कैद कर लिया[२]। इससे इस बघेल राजा का समूची प्रजा में बहुत सम्मान हुआ। महाकवि गोविन्द भट्ट ने इस घटना को अत्यधिक महत्व देते हुए अपने रामचन्द्रयशःप्रबन्धः में ४ बार इसका उल्लेख किया है।

इसके साथ ही बादशाह अकबर के राज्य के आठवें वर्ष अर्थात् १५६४ ई. में रामचन्द्र बघेल ने कड़ा के सूबेदार गाजी खाँ तातारी का पक्ष लिया था जो कि अकबर का विरोधी था। अकबर ने आसफ खाँ को कड़े का सूबेदार बना कर वहां भेजा था। तब गाजीं खाँ डर कर रामंचन्द्र के पास भागा आया तथा बघेल नरेश ने इसे शरण दी। इस पर अकबर ने इस नरेश के पास सन्देश भेजा कि वह गाजी खाँ को अकबर के हवाले कर दे। क्योंकि वह राजद्रोही है। पर रामचन्द्र ने अपने स्वाभिमान का बोध करते हुए इस शरणागत को अकबर के पास भेजना अस्वीकार कर दिया।

इस अवज्ञा के कारण आसफ खाँ के सेनापतित्व में शाही सेना का इस बघेल नरेश के साथ भयंकर युद्ध ठन गया। इससे गहोरा राजधानी की बड़ी हानि हुई। इसमें गाजी ख़ाँ मारा गया। राजा रामचन्द्र को बान्धोगढ़ की ओर

१. वीरभानूदय काव्यम् १०.३

२. अल बदाआनी भाग १ पृष्ठ ५४२-४४ तथा ५५३-५४
History of Babar and Humayun : Erskine Vol. II Page 501

भागना पड़ा। तब आसफ खाँ की सेना ने उसका पीछा किया तथा बान्धोगढ़ पहुँच कर उसके किले में घेरा डाल दिया। बहुत दिनों तक यह घेराव बना रहा। अन्त में दिल्ली दरबार में उपस्थित हिन्दू राजाओं की प्रार्थना पर किसी तरह यह घेराव उठवाया गया[१]।

रामचन्द्र का राज्य-विस्तार—रामचन्द्र का राज्य लगभग उतने ही प्रदेश में था जिसे इनके पूर्ववर्ती नरेशों ने उपार्जित किया था। प्रस्तुत कवि ने इसके राज्य विस्तार को बहुत प्रशंसित माना है। एक श्लोक में कहा गया है कि रामचन्द्र उम्र में लगभग बच्चे होने पर भी अखण्ड भूमण्डल का भार उठाने लगे थे[२]! स्पष्टतः यह प्राचीन कवियों की परम्परा के अनुसार प्रशंसा में अत्युक्तिपूर्ण वचन है।

कवि ने एक अन्य श्लोक में इनकी राज्य-सीमा का स्पष्ट उल्लेख किया है। वहाँ कहा है कि रामचन्द्र ने अन्तरावेद अर्थात् गंगा यमुना के दोआब से अमरकण्टक तक अर्थात् नर्मदा तथा सोन नदियों के उद्गम स्थान तक राज्य किया[३]। अन्य प्रसंगों में भी इनका प्रयाग में निवास[४] तथा अपने पुत्रों के साथ अलर्कपुर-सेवन[५] का वर्णन किया गया है।

पर अन्य इतिहास ग्रन्थों के विवरण से प्रतीत होता है कि इनके राज्य में स्थिरता नहीं रही तथा इनकी सीमाएँ घटती बढ़ती रहीं। उपरि वर्णित १५६४ ई. में हुई घटना के पश्चात् राजा रामचन्द्र को गहोरा से भाग कर बान्धोगढ़ में शरण लेनी पड़ी थी। तब से अकबर इन्हें विद्रोही मानता था। अन्ततः इस विरोध को शान्त करने के लिये कलिंजर का किला अकबर को सौंप देना पड़ा। इतिहासकारों के अनुसार हिज्री सन् ९७७ के सफर महीने अर्थात् जुलाई १५६९ को रामचन्द्र ने कलिंजर किले की चाभी अकबर को सौंप दी थी।

---

१. Ain-i-Akabari of Abul Fazl : Tr. Blochmann Page 367.

२. वीरभानूदयकाव्यम् १०.२

३. कृत्वान्तरा वेदमथो कलिंग सीमेतरत्रामरकण्टके च।
आदक्षिणाम्भोनिधि यः प्रतापैः रामः स राजाऽभवदद्वितीयः —काव्यम् १०.७

४. वही ९.३३ ५. वही १२.२९

अकबरनामा के अनुसार कलिंजर पर अधिकार होने का समाचार ११ अगस्त १५६९ को दिल्ली पहुँचा था[१]।

अकबर ने इस किले के बदले में रामचन्द्र बघेल को अरैल का परगना तथा पियाग अर्थात् प्रयाग की जागीर दी थी। इस प्रयाग में त्योंथर तहसील भी सम्मिलित थी[२]।

इस तथ्य की पुष्टि अन्य प्रमाणों से भी होती है। जमाबन्दियों में कहा है कि कालिंजर के हाथ से निकल जाने के बाद प्रयाग उनके अधिकार में आया। तब रामचन्द्र ने ही १५६९ ई. में प्रयाग में किले की नींव डलवाई थी[३]।

इसके पश्चात् काफी समय तक रामचन्द्र की गहोरा राजधानी बनी रही थी। पद्नाभ मिश्र ने अपने वीरभद्रचम्पू में इसका उल्लेख किया है[४]। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १५७७ ई. है। अतः स्पष्ट है कि इस समय तक कलिंजर दुर्ग के छिन जाने पर भी गहोरा में रामचन्द्र का शासनाधिकार बना हुआ था।

फिर भी प्रस्तुत चम्पू के अनुसार राजा रामचन्द्र किसी कारण बान्धवगढ़ में ही निवास किया करते थे। क्योंकि नीतिविशारद राजाओं की यह नीति है कि वे प्रतिपक्षी शत्रुओं के अस्त समय की प्रतीक्षा करते हुए उस बीच दुर्ग का ही सहारा लेते हैं जैसे कृष्ण मानों मागधेश जरासन्ध के भय से मथुरा राजधानी को छोड़कर द्वारिका में रहते थे। यद्यपि वे कंस आदि को मार चुके थे[५]! इस विवरण से स्पष्ट है कि राजा रामचन्द्र अपनी सुरक्षा के कारण

---

१. Akabarnama of Abul Fazl : H. Beveridge Vol. 2. Page 498-9

२. Al- Badaoni : Lowe's translation Vol. II page 123-29

३. प्राग के किला कै थूनि भै, तब कालिंजर छेंकि गा।
एकत्रा जमाबन्दी-३

४. अस्ति प्रशस्तिभिरलंकृत दिग्विभागा।
राजानुरक्तमनुजा नगरी गहोरा- वीरभद्रदेव चम्पूः
—उच्छ्वास १.१३

५. तस्य विषये दुर्गरलं बान्धवः। कस्माच्चिन्निमित्तात् साम्प्रतं तमधितिष्ठति। पन्था हि नीतिविदां प्रभूणां यत् प्रतिपक्षास्तमयसमयप्रतीक्षया दुर्गमेवाश्रयन्ते।
-वही उच्छ्वास १

बान्धवगढ़ में रहते थे। जैसा कि ज्ञात है, बान्धवगढ़ सुदृढ़ सैनिक केन्द्र था तथा वहाँ मजबूत दुर्ग था। जबकि गहोरा में यह सुरक्षा उपलब्ध नहीं थी।

पर ऐसा लगता है कि १५७७ ई. के पश्चात् किसी समय गहोरा राजधानी नहीं रही थी। क्योंकि कवि रूपणि शर्मा ने अपने बघेलवंशवर्णनम् नामक काव्य में गहोरा के स्थान पर रामनगर को राजधानी बताया है। उसके वर्णन के अनुसार इस व्यापक प्रभाव वाले रामचन्द्र के राज्य में बान्धव नाम का दुर्गरत्न है[१]। इसके पार्श्व में रामनगर नामक राजनगरी विराजती है[२]। अग्निहोत्रीजी के अनुसार यह रामनगर सतना जिले के अमरपाटन तहसील का रामनगर कस्बा हो सकता है। यहाँ अब भी पुराना किला तथा पुरानी बस्ती है। यह बान्धवगढ़ से केवल ३५ मील उत्तर-पश्चिम है[३]।

रामचन्द्र के शासन में यह उथल पुथल हर समय जारी रही। क्योंकि १५६९ ई. में कलिंजर के बदले में प्रयाग की जो जागीर प्रदान की गई थी उसे भी अकबर ने १५८४ ई. को छीन लिया तथा वहाँ स्वयं किला बनवाने का हुक्म दिया। इस प्रकार वहाँ से बघेली सत्ता सर्वथा समाप्त हो गई। इतिहासकारों के अनुसार २९वें वर्ष अर्थात् १५८४ ई. में शाहंशाह ने गंगा-यमुना के संगम पर एक किला बनाने तथा शहर बसाने का हुक्म दिया तथा इसका नाम इलाहाबास रखा। बाद में इसे इलाहाबाद नाम दिया गया[४]।

आज सभी लोग इलाहाबाद का किला अकबर का बनवाया मानते हैं। पर इस तथ्य को कम ही लोग जानते हैं कि इसकी नींव रामचन्द्र बघेल ने ही रखवाई थी। इसकी राज्य-सीमाएँ अकबर के प्रभाव से धीरे-धीरे सिकुड़ती गईं थीं।

पर यह स्पष्ट है कि इन्होंने अपने जीवन में अनेक अवसरों पर अपने स्वाभिमान को बचाए रखने का भरपूर प्रयास किया। इन्होंने अपने यौवनकाल में एक बार भी अकबर के दरबार में उपस्थित होना स्वीकार नहीं किया। जब

---

१. देशे यस्य प्रसृतमहसो बान्धवो दुर्गरत्नम्- बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ४०
२. पार्श्वे तस्य क्षितिप - - - नगरी- - । विभति रामनगरं - - -।
वही श्लोक ५२-५४
३. बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. २१८.
४. अकबर : निजामुद्दीन अहमद भाग २, पृष्ठ १२१

कि अकबर इसके लिये बहुत उत्सुक था। प्रस्तुत वीरभानूदयकाव्य में भी रामचन्द्र की अकबर के साथ सन्धि अथवा उनसे मिलने का एक बार भी उल्लेख नहीं है। पर अकबर की अधीनता स्वीकार करना इस बघेल नरेश की विवशता थी। अकबर के राज्य के २८वें वर्ष, जब प्रयाग की जागीर भी इस नरेश के हाथ से छीनी जा रही थी, तब पहली और अन्तिम बार रामचन्द्र अकबर के दरबार में फतेहपुर सीकरी में उपस्थित होने के लिये राजी किये जा सके इसके लिये अकबर ने जईन खाँ कोका तथा बीरबल को बान्धोगढ़ भेजा था। इस समय सम्भव है दरबार में पहुँचने से रामचन्द्र के मन में जागीर के न छिनने की कुछ क्षीण सी आशा जगी हो। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। जैसा कि ऊपर लिखा गया, अपने राज्य के २९ वें वर्ष अकबर ने प्रयाग को बघेल नरेश से छीन कर वहाँ किला बनवाने का हुक्म दे दिया! ऐसा लगता है कि रामचन्द्र के दरबार में उपस्थित होने के बाद भी अकबर का मन इनकी नम्रता के विषय में पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुआ था।

दरबार से लौटने के बाद तथा १५८४ ई. में प्रयाग छिनने के बाद रामचन्द्र ने शेष जीवन में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। वे वृद्ध भी हो गए थे। १५९२ ई. में उनकी मृत्यु हो गई।

वीरभद्र

जन्म[१] : संवत् १६१० अथवा १५५४ ई. मृत्यु १५९३ ई.

शासनकाल १५९२-९३

हुमायूँ के काल में जन्म

अकबर के काल में शासन

काव्य के १२ वें सर्ग में वीरभद्र जन्म का वर्णन है। समयानुसार रामचन्द्र की रानी यशोदा से इनका जन्म हुआ। इससे वीरभानु की पौत्रदर्शन की इच्छा पूर्ण हुई। रामचन्द्र को भी अन्दर से अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पर वे अपने पिता के आगे उसे प्रकट न कर सके। अपितु उनके पास लज्जा से नम्र होकर खड़े रहे[२]!

---

१. राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का -एकत्रा जमा बन्दी-१

२. वीरभानूदय काव्यम् १२.७

पितामह वीरभानु ने अपने पौत्र के जन्म पर खूब मंगल वाक्योंका प्रबन्ध किया तथा उन्होंने याचकों को हाथी, घोड़े आभूषण, वस्त्र इतना अधिक दिया कि वे पूरे जीवन फिर कभी याचक न रहें[१]। इस प्रकार राजा वीरभानु तथा उनकी महारानी राजमती ने खूब आनन्द मनाया।

हुमायूँ द्वारा उपहार-प्रदान—इस समय काव्य में एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख है। वहाँ कहा है कि इस शुभ समाचार को सुनकर दिल्लीश्वर यवन सम्राट् हुमायूँ भी परम प्रसन्न हुआ। इसलिये उसने अपने निजी मन्त्रियों के द्वारा अत्यन्त शुभ आभूषण, घोड़े, कपड़े तथा सुगन्धित द्रव्य वीरभानु के पास भेजे तथा इस प्रकार उसने वीरभानु को भाई बना लिया[२]।

वीरभद्र—जन्म तथा प्रस्तुत उपहार प्रदान का काल—इन दोनों घटनाओं के समय के विषय में किंचित् भिन्न मत उपस्थित किये जाते हैं। यों जमाबन्दियों में स्पष्टतः १५५४ ई. में वीरभद्र का जन्म स्वीकार किया है। अतः सहज ही हुमायूँ द्वारा उपहार प्रदान का भी यही काल होना चाहिये।

पर हीरानन्द शास्त्रीजी ने कतिपय प्रमाणों के आधार पर यह माना है कि उपहार भेजने की यह घटना १५३० से १५४० ई. के बीच कभी हुई होगी, जब हुमायूँ प्रथम बार दिल्ली का अधिपति था। काव्य में भी उपहार भेजते समय हुमायूँ को दिल्लीश्वर बताया गया है। इस प्रकार हुमायूँ के राज्य शासन के मध्य १५३५ ई. के आसपास वीरभद्र का जन्म माना जा सकता है। इस ग्रन्थ के हस्तलेख के प्रारम्भ की सील में 'वीरभदर बन्दह शाह अकबर' लिखा है तथा यह वर्ष १५५७ ई. की है। इस समय उसकी उम्र २२ वर्ष की रही होगी। स्पष्टतः वह इस उम्र में अकबर के दरबार में बघेलों का प्रतिनिधित्व कर सकता था।

---

३. हयान् गजान् कंचनभूषणानि वासांसि रत्नानि च याचकेभ्यः।
ददौ तथा येन न यावदायुः प्रापुः पुनस्तेऽर्थिजनप्रयासम्

—काव्यम् १२.९

१. स प्रेषयामास निजैरमात्यैचरैः शुभान्याभरणानि हृष्टः।
अश्वान् सुवासांसि सुगन्धवस्तु भ्रात्रीकृतस्तेन हि वीरभानुः।

—काव्यम् १२.२१

शास्त्रीजी का यह भी कहना है कि जब हुमायूँ दूसरी बार राजगद्दी पर बैठा था, तब यह उपहार भेजने की घटना सम्भावित नहीं है। क्योंकि तब वह अनेक प्रकार की कठिनाइयों में फँसा था। इस प्रकार १५३५ ई. ही वीरभद्र के जन्म का सम्भावित समय निश्चित होता है[१]।

पर अग्निहोत्री जी ने कतिपय प्रमाणों तथा काव्य के अन्तः साक्ष्य के आधार पर भी उपर्युक्त मत को अयुक्त सिद्ध किया है[२]। सर्वप्रथम १५३५ ई. को वीरभद्र का जन्म मानने पर जमाबन्दियों में लिखा गया सभी तिथि निर्धारण गड़बड़ा जाता है। जमाबन्दियों में १५३५ ई. को रामचन्द्र का जन्म बताया गया है। फिर इस तिथि को वीरभद्र का जन्म किस प्रकार हो सकता है।

यदि हम यहाँ थोड़ी देर के लिये जमाबन्दियों के इन उल्लेखों को अमान्य भी कर देवें तो भी १५३५ ई. को वीरभद्र के जन्म को सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि प्रस्तुत काव्य से ध्वनित है कि रामचन्द्र के जन्म से पूर्व इनके पितामह वीरसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। क्योंकि काव्य के सातवें सर्ग में वीरभानु की रानी राजमती ने स्वर्ग से आए हुए श्री वीरसिंह को स्वप्न में देखा है। इससे सिद्ध है कि राजमती के गर्भिणी होने से पूर्व वीरसिंह दिवंगत हो चुके थे। अन्य सुपुष्ट प्रमाणों से १५२७ ई. में वीरसिंह का जीवित होना प्रमाणित है। बाबर नामा के अनुसार वीरसिंह १५२७ ई. में कनवाहा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध राणा साँगा के पक्ष में लड़े थे। यदि हम इस युद्ध के तत्काल पश्चात् भी वीरसिंह की मृत्यु स्वीकार कर लें तो भी १५२८ ई. से पूर्व रामचन्द्र का जन्म कदापि नहीं माना जा सकता। इस परिस्थिति में १५३५ ई. में रामचन्द्र की मात्र ७ वर्ष की उम्र में वीरभद्र का जन्म असम्भव है तथा इस प्रकार १५५७ ई. में वीरभद्र का २२ वर्ष का होकर अकबर के दरबार का प्रतिनिधित्व भी सर्वथा असम्भव है।

अतः यह सर्वथा उचित है कि हम जमाबन्दियों के लेखों को प्रामाणिक मानते हुए जैसे का तैसा स्वीकार करें। इस प्रकार रामचन्द्र का जन्म १५३५

१. We may therefore take 1535 A.D., the middle year, as the probable date of birth of Virabhadra - Hirananda Shastri : Critical Analysis -page 5.

२. बघेल खण्ड के संस्कृत काव्य पृ. १०७.

ई. तथा वीरभद्र का जन्म १५५४ ई. सिद्ध है। इसी समय हुमायूँ ने उपहार भेजा था। क्योंकि वह १५५४-५५ ई. में सूर सुल्तानों से दिल्ली वापस लेकर पुनः दिल्लीश्वर बना था।

१५५७ ई. पूर्वोक्त सील के अंकन के समय रामचन्द्र बघेल राज्य कर रहे थे। सम्राट् अकबर का राज्यारोहण १५५६ ई. को हुआ था। मुगल काल में नए शाहंशाह के गद्दी में बैठने पर सभी छोटे बड़े राजा उनकी अधीनता प्रकाशित किया करते थे। अतः रामचन्द्र ने अधीनता स्वीकार करने के लिये, परन्तु साथ ही अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिये अपना नाम न देकर, पर अपने शिशु वीरभद्र का नाम देकर पूर्वोक्त सील अंकित कराई। इस समय वीरभद्र मात्र ३ वर्ष के थे।

वीरभानु का त्रिवेणी-सेवन—वीरभद्र के जन्म के पश्चात् शीघ्र ही वीरभानु ने सम्पूर्ण राज्य कार्य रामचन्द्र को सौंप दिया था तथा इस प्रकार इन्होंने शासन की जिम्मेदारियों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी[१]। अब वे बड़ी शान्ति से अलर्कपुर में निवास करते हुए गंगा-यमुना के संगम स्थल का सेवन करने लगे थे[२]। कवि ने इस समय का बहुत ही करुण शान्त वर्णन किया है। एक श्लोक के अनुसार गंगा की तरंगों में यमुना के कल्लोल पूर्वक मिलने पर उनकी दृष्टि लगी ही रहती थी। ऐसा लगता था कि उनकी आँखें गुप्त सरस्वती को खोजने में लगी हुई हों[३]!

इस अत्यन्त शान्त वातावरण में वीरभानु बघेल १५५५ ई. के अन्त या १५५६ ई. के प्रारम्भ में दिवंगत हुए। यद्यपि कवि ने इस दुखद घटना को स्पष्ट शब्दों में नहीं लिखा है। पुनरपि १२.४१ में कवि ने 'आसीदेवं - - - वीरभानुः' में भूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि प्रस्तुत काव्य की रचना के समय वीरभानु दिवंगत हो चुके थे।

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् १२.२८

२. वही १२.२९

३. गगातरंगेषु कलिन्दजायाः कल्लोलमालामिलितेषु दृष्टिः।
विवेश वेश्माग्रगतस्य तस्य सरस्वती द्रष्टुमिवातिगुप्ताम्।
—काव्यम् १२.३७

प्रस्तुत काव्य के नायक के इस वर्णन के पश्चात् ही काव्य का उद्देश्य पूरा हो जाता है। अतः यहाँ वीरभद्र के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं दी गई है। फिर भी अन्य इतिहासकारों द्वारा स्पष्ट है कि रामचन्द्र के शासनकाल में युवराज वीरभद्र प्रायः दिल्ली दरबार में सम्राट् अकबर की सेवा में रहा करते थे। १५९२ ई. में राजा रामचन्द्र की मृत्यु के समय भी वे दिल्ली में ही थे। अपने पिता के निधन का दुखद समाचार सुनकर वे बान्धोगढ़ की ओर चल पड़े। पर दुर्भाग्यवश रास्ते में उनकी पालकी टूट जाने के कारण उन्हें गम्भीर चोट लगी। किसी प्रकार बान्धोगढ़ पहुँच कर उन्होंने इसी दशा में शासन कार्य प्रारम्भ किया। पर उनकी यह चोट घातक सिद्ध हुई। क्योंकि अगले वर्ष १५९३ ई. में इस चोट के कारण उनकी दुखद मृत्यु हो गई[१]।

अकबर को भी इस दुर्घटना के समाचार से बहुत दुख हुआ था। अपने इस दुख तथा सहानुभूति को प्रकट करने के लिये वह दिल्ली में अवस्थित बान्धवनरेश के रिश्तेदार राठौर रामसिंह के यहाँ उपस्थित हुआ था[२]।

परन्तु डा. अग्निहोत्री जी एक अन्य प्रमाण के आधार पर वीरभद्र की इस निधन-तिथि को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार मथुरा में वीरभद्र के दान का एक पाट प्राप्त है। इसमें लिखा है कि 'फागुन बदी २, भौमे संवत् १६५३ का मथुरिया चौबे कमले चौबे की संतान का लिखी दीन'। इससे लगता है कि संवत् १६५३ अर्थात् १५९५ ई. को वीरभद्र अवश्य वर्तमान ते। अतः उनके अभिमत के अनुसार 'एकोत्तरा बान्धोगढ़ में वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य का राज्याभिषेक संवत् १६४६ है। उसे १६५६ अर्थात् १५९९ ई. माननां चाहिये[३]। पर यह अभिमत जमाबन्दियों से विरोध के कारण विवादास्पद है। हम ऊपर देख आए हैं कि जमाबन्दियों के विवरण बहुत प्रामाणिक हैं।

---

१. Critical analysis page 4

२. Ain-i-Akabari of Abul Fazl : Tr. Blochmann Vol. I P. 35

३. संस्कृत साहित्य को बान्धव नरेशों की देन पृ. ८५

वीरभद्र पर लिखे गए वीरभद्रदेव चम्पू नामक मनोहारी काव्य में वीरभद्र के रण-अभियान तथा वीरता की बहुत अधिक प्रशंसा की गई है। इसमें मंन्दोदरी तथा विभीषण के मुख से वार्तालाप कहलाया गया है। क्योंकि प्रस्तुत चम्पू का कवि रघुकुल तिलक रामचंन्द्र में तथा बघेल नरेश रामचन्द्र में कोई विशेष भेद नहीं देखता। इसमें बड़े ही मनोहारी ढंग से पूछा है कि क्या बघेल नरेश वीर रामचन्द्र भी भानु अर्थात् सूर्यवंश के हैं। उसका उत्तर देते हुए कहा है कि ये भानु वंश के नहीं, अपितु वीरभानु वंश के हैं[१]!!

इसमें वीरभद्र के सैनिक अभियान की जैसी प्रशंसा है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें कहा है कि इसके अभियान के समय समुद्र क्षुभित हो जाता है, पहाड़ गिरने लगते हैं, शत्रु घबड़ाने लगते हैं, पृथ्वी को धारण करने वाला कर्म कुण्ठित हो जाता है, शेषनाग काँपने लगता है तथा मतवाले हाथी भागने लगते हैं[२]!!

अन्य प्रसंग में वीरभद्र की सेना के घोड़ों के द्वारा उठी हुई धूल के भयंकर बादल को देखकर यह भयपूर्ण अचरज प्रकट किया गया है कि यह विन्ध्य पर्वत, जिसने अगस्त्य के आदेश के अनुसार अपने को ऊंचा उठाना रोक दिया था, वह आज किस प्रकार पुनः ऊँचे उठने लगा है[३]!!

यहाँ के कवियों को यह कल्पना बहुत प्रिय प्रतीत होती है। बघेलवंशवर्णनम् में बान्धवगढ़ दुर्ग की ऊँचाई का वर्णन करते हुए लगभग इसी प्रकार कहा है। उस विवरण के अनुसार इस दुर्ग की ऊँचाई को देखकर सूर्य को यह भ्रम होता है कि विन्ध्य पर्वत पुनः सिर उठाकर रास्ता रोकने लगा है। तब सूर्य आगे बढ़ने से रुक जाता है। पुनः इन्द्र सहित अनेक देवताओं

---

१. **मन्दोदरी** - किमस्यापि वीर भानोरन्वयः।
विभीषणः - तन्वि, वीरभानोर्न तु भानोः
— वीरभद्रदेवचम्पू पृ. १

२. क्षुभ्यत्यम्बुधयः स्खलन्ति गिरयस्त्रस्यन्ति वैरिव्रजाः।
कूर्मः कुंथति कम्पते फणिपतिर्भ्रश्यन्ति दिक्कुंजराः।।
— चम्पू १.५८

३. विन्ध्याद्रिरद्यावधि सन्निरुध्य स्वात्मानमभ्यर्थनया महर्षेः सम्प्रत्यवज्ञाय कुतोऽपिहेतोर्भूयः समुत्तिष्ठति सम्भ्रमेण - वीरभद्रदेव चम्पू : १.३

के लड़खड़ाते स्वर से बार बार प्रार्थना करने पर वह पुनः आगे बढ़ना प्रारम्भ करता है[१]!!

चम्पू के अनुसार वीरभद्र की इस यात्रा का उद्देश्य सागर तक अभियान करना है[२]। पर अन्य प्रसंग से यह ध्वनित होता है कि इस अभियान के द्वारा रत्नपुर पर आक्रमण किया गया था। सप्तम उच्छ्वास के प्रारम्भ में कहा है कि इस समय महाराज वीरभद्र रत्नपुर-विजय में लगे हैं। अतः इस बीच लंका-नरेश सावधान हो जावेंगे। हम जानते हैं कि बघेल नरेशों के रत्नपुर के साथ बड़े विचित्र खट्टे मीठे सम्बन्ध रहे हैं। इससे पूर्ववर्ती नरेश भी रत्नपुर की ओर अपना अभियान कर चुके थे। अतः इस क्रम में वीरभद्र ने भी इस ओर अभियान किया हो तो अस्वाभाविक नहीं है।

वीरभद्र के उत्तराधिकारी

संस्कृत काव्यों में वीरभद्र के उत्तराधिकारी नरेशों का वर्णन विस्तार से प्राप्त नहीं है। बघेलवंशवर्णनम् में १-१ श्लोकों के द्वारा इनका उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य थे। ये युद्ध में तलवार के द्वारा अत्यन्त वीरता दिखाते थे[३]।

मुस्लिम इतिहासकारों ने इस समय अकबर के द्वारा वीरभद्र के अवैध पुत्र दुर्योधन को बान्धवगढ़ की सत्ता सौपने का उल्लेख किया है[४]। पर संस्कृत

---

१. दृष्ट्वा दृष्ट्वा मुहुरतिलसद् वृद्धिमेतस्य सूर्यो,
विन्ध्योत्थानभ्रमहतमनाः स्थैर्यमार्यः प्रयाति।
देवैः सेन्द्रैः स्खलितवचनैः प्रार्थितः सोऽयमुच्चै-
रारादाराद्धृतपदयुगो व्योम्नि भूयोऽप्युदेति - बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ४४

२. केनचिन्निमित्तेन सागरावधिरेवायं यात्राविधिः - चम्पूः १.२२ श्लोक के आगे। डॉ. अग्निहोत्री जी ने बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. २७८ की टिप्पणी में 'सागरावधि रेवायां यात्राविधिः। ऐसा पाठ मानते हुए रेवा या नर्मदा तक वीरभद्र के अभियान की बात कही है। पर यह समुचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि चम्पू के हस्तलेख में स्पष्टतः 'सागरावधिरेवायं' ऐसा ही कहा गया है।

३. बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ६१

४. Ain-i-Akbari of Abul Fazl Page 406-7

काव्यों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। जमाबन्दियों के अनुसार जहाँगीर ने संवत् १६६१ (अर्थात् १६०५ ई.) को अपना फरमान जारी करके विक्रमादित्य को १८ परगनों की जागीर सौंपी थी। विक्रमादित्य ने रीवा के किले से शासन करना प्रारम्भ किया, जिसे सलेमशाह ने बनवाया था[1]।

यह पहले कहा जा चुका है कि १५४४ ई. में शेरशाह सूर ने क़लिंजर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया था। पुनः उसका बेटा जलालखाँ १५४५ ई. में शासनारूढ हुआ। इसने इस समय इस्लामशाह की उपाधि धारण की। इसने अपने राज्य विस्तार की दृष्टि से इसी वर्ष रीवा पर अधिकार कर लिया तथा एक गढ़ी का निर्माण कराया। विक्रमादित्य ने बान्धवगढ़ की व्यवस्था सही न देखते हुए सर्वप्रथम इसी गढ़ी को किला का रूप देकर रीवा से राज्यशासन का प्रारम्भ किया। इस प्रकार १६०५ ई. से रीवा ही बघेल नरेशों की प्रिय राजधानी रही है।

विक्रमादित्य के पुत्र अमरेश या अमरसिंह का वर्णन श्लोक ६३ में तथा इनके पुत्र अनूपसिंह का वर्णन श्लोक ६४ में संक्षिप्त शब्दों में किया गया है[2]। काव्य के अनुसार ये दोनों राजा वीर, यशस्वी तथा सूर्य के समान ऊर्ध्वगामी थे।

भावसिंह

[3]जन्म-संवत् १७०७ अर्थात् १६५०ई.। मृत्यु संवत् १७५१ अर्थात् १६९४ई.
शासन-काल १६७५ ई. से १६९४ ई. तक
औरंगजेब के समकालीन

राजा भावसिंह ने बघेलवंशवर्णनम् के प्रणेता कवि रूपणि शर्मा को राज्याश्रय प्रदान किया था। अतः इस कवि ने इनकी बड़े विस्तार से प्रशंसा

---

१. तकसीम परिगने माफिक फरमान जहाँगीर साह का राजा विक्रमाजीत की जागीर का .....तबक सं. १६६१ के साल। फरमान सरकार महाल परगने १८.....रीमा का किला सलेमसाह पातसाह बनवावा।.... वैसाख बदी ५ बुधे कहं किले मं नेइ भै। बिकरमाजीत ते किले आएँ। (क) एकत्रा बान्धोगढ़ (जमाबन्दी १)
२. बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ६३-६४
३. एकत्रा बान्धोगढ़ जमाबन्दी १ के अनुसार

की है। एक श्लोक में कवि ने कहा है कि चन्द्रमा प्रतिदिन उदित होता है। वह प्रति रात्रि भावसिंह के यशरूपी चन्द्र को अपने से भी अधिक मनोहारी तथा सुन्दर देखकर लजा जाता है। इसीलिये वह प्रतिरात्रि अपने स्वरूप को बिगाड़कर नए-नए रूप में उदित होता है[१]!! अन्य श्लोक में कहा है कि दिल्ली का अधीश्वर (औरंगजेब) भावसिंह को अपना मित्र मानता है[२]। एक अन्य श्लोक में अपनी व्यथा प्रकट करते हुए कहा है कि इस समय द्विज ब्राह्मणों का दमन करने वाले यवन सम्राट् शासक हैं तथा कलिकाल का प्रभाव बढ़ रहा है। ऐसी दशा में यदि विख्यात उदार स्वभाव वाले भावसिंह पालन न करते तो याचक वृन्द कैसे जीवित रह पाते[३]!!

काव्यग्रन्थों में रीवा— संस्कृत काव्यों में सर्वप्रथम इस श्लोक में रीवा का वर्णन इस प्रकार प्राप्त हुआ है—

दुर्गो यस्य चकास्ति बान्धवगिरिः प्राज्याज्यधाराहुतै-
स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति विदिता रेवापुरी सुन्दरी।

—बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ७६

अर्थात् जिसके अधिकार में बान्धवगिरि शोभित है तथा घृताहुति से यज्ञाग्नि को सन्तुष्ट करने वाले जिस राजा भावसिंह के अधिकार में सुन्दरी रेवापुरी है!!

इस श्लोक से दो तथ्य अतीवं स्पष्ट हैं— उस समय भी बघेल नरेश समयानुसार यज्ञ हवन सम्पादित करते थे। साथ ही उस समय की रीवा नगरी का अप्रतिम सौन्दर्य था।

---

१. यशश्चन्द्रं दृष्ट्वा निरशकलबिम्ब त्रिभुवने
विभातं यद् भासा विधुरतिसलज्जः प्रतिनिशम्।
विनिर्मायात्मानं नट इव चमत्कार-कुशलो
विदित्वा तद् भाव विघटयति मन्ये नरपते —बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ६४

२. दिल्लीशो मनुते हितम् - वही श्लोक ७३

३. सम्राजो यवना द्विजातिदमनाः कालः कलिः सज्जन-
व्यूहाब्जामृतदीधितिर्धृति - लता - चण्डांशुरुज्जृम्भते।
जीवेदर्थिजनो विशेषविदितोदारस्वभावः कथं
नो चेत्तं परिपालयेन्नरपतिः श्रीभावसिंहः प्रभुः।। —श्लोक ७५

इस नगरी का यह नाम स्पष्टतः नर्मदा नदी के एक अन्य नाम 'रेवा' के द्वारा पड़ा है। संस्कृत समाज में यह नाम अत्यन्त प्रिय था। महाकवि कालिदास ने मुक्तकण्ठ से इस नाम का प्रयोग किया है[1]। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि साधारण जनों में भी यह नाम लोकप्रिय हो गया था। क्योंकि प्राकृत ग्रन्थों में भी अनेक बार इस नदी के लिये रेवा का उल्लेख प्राप्त हुआ है[2]।

साधारणतः सामान्य जनों में गंगा तथा नर्मदा के साथ अनेक उत्तर तथा दक्षिण की नदियों के प्रति एक साथ पूज्यभाव रहा है। यहाँ के लोग इन श्लोकों के द्वारा गंगा, नर्मदा नदियों को एक साथ मिलाकर अर्घ्य देने के पक्षपाती रहे हैं—

गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती,
नर्मदा चैव कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

बघेलनरेशों में भी वीरसिंह जैसे राजा एक ओर अलर्क में गंगाजल में तो दूसरी ओर गढ़ा के पास नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करते रहे हैं।

भारतीय संस्कृति की इस लम्बी परम्परा में इस क्षेत्र को नर्मदा से अभिन्न समझते हुए रेवा नाम दिया गया हो तो आश्चर्य ही क्या है। कलचुरि अभिलेखों में इसका रेवापत्तला नाम प्राप्त है, जोकि स्पष्टतः रेवापत्तन का बिगड़ा हुआ रूप है। इस रेवापत्तन की प्रस्तुत काव्य की रेवापुरी से सहज ही तुलना की जा सकती है।

इस स्थान की विंभिन्न गतिविधियों के आधार पर इस नाम के आधार पर अन्य नाम विकसित हुए। जैसे गुढ़ के पास 'रेवहटा' नाम वहाँ के अच्छे बाजार के कारण प्रकल्पित हुआ। संस्कृत तथा प्राकृत में भी हट्ट शब्द बाजार के लिये प्रचलित है। रीवा में इस हट्ट के आधार पर चोरहटा, सिजहटा (< शीर्षहट्ट = मुख्य बाजार) आदि अनेक नाम प्रचलित है। इसी प्रकार रेवाहट्ट को रेवहटा कहा गया।

---

१. रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां;
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य-मेघदूतम्, पूर्वमेघ श्लोक १९

२. गाथा सप्तशती श्लोक ५७८
तथा प्राकृतसूक्तरत्नमाला श्लोक ६७

प्रस्तुत बघेलवंशवर्णनम् काव्य में उस समय की रेवापुरी की सीमा में ये ४ गाँव बताए गए हैं— केदा, कोटर, हंसजात तथा टमकु[१]। इनमें से कोटर गाँव की पहचान कर ली गई है। प्रस्तुत काव्य के अनुवादक प्रो. चिन्तामणि मालवीय के अनुसार यह कोटर गाँव सतना से १६ मील उत्तर की ओर सतना-सेमरिया मार्ग पर आज भी अवस्थित है[२]।

पर डा. अग्निहोत्री जी के अनुसार यह गाँव बाँदा जिले में यमुना तट पर अवस्थित था[३]। यही मत समुचित प्रतीत होता है। क्योंकि वीरभानूदयकाव्य (४.१) में भी कोटर का उल्लेख प्राप्त है। वहाँ अन्य श्लोकों में इस कोटर की अवस्थिति का भी वर्णन किया गया है। अतः यह भावसिंह के रीवा राज्य की उत्तरी सीमा रही होगी।

काव्य में उल्लिखित स्थानों के नाम

गहोरा—बघेल नरेशों की यह पहली राजधानी आधुनिक बाँदा जिले की कर्वी तहसील से लगभग १४ मील पूर्व बाँदा इलाहाबाद राजमार्ग के पास अवस्थित थी। यहाँ पर वर्तमान में रैपुरा गाँव है तथा नदी के उस पर खेरवा गाँव है। यहाँ पर अब भी प्राचीन महलों, मन्दिरों आदि के अवशेष मिलते हैं। रैपुरा के दक्षिण में दो नदियों के बीच में गहोरा या घोरा खास अब भी वर्तमान है। वास्तव में ये सभी मिलकर प्राचीन गहोरा के अन्तर्गत थे। इनमें से अनेक भागों में अब प्राचीन महलों के स्थान में खेती होने लगी है। इसका खेरवा नाम भी इसी भाव को पुष्ट करता है। क्योंकि इसका मूल अर्थ परित्यक्त या उजड़ी हुई बस्ती है।

---

१. केदा-कोटर-हंसजात-टमकु ग्रामाः परिच्छेदकाः।
सीम्नो यस्य भुवः सदाऽवति सतः श्री भावसिंहः प्रभु।।—बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ७६

२. Notes on Baghel Vansh Varnanam by C.M. Malviya Page. 8

३. यह गाँव यमुना तट पर था। इससे प्रतीत होता है कि भावसिंह के राज्य की उत्तरी सीमा यमुना-तट तक विस्तृत थी।

—बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. २२०

काव्य के अनुसार यहाँ अमृत जल से मनोहारी गन्ता, केवयी तथा धीरवती नदियाँ बहती है[१]। इनकी पहचान क्रमशः गन्ता कवई तथा धिरवा के रूप में की गई है। इस समय ये लगभग नाले का रूप ले चुकी है। काव्य में यह भी बताया है कि गहोरा के निकट कौबेर, केदार तथा शिलोच्चय पर्वत वर्तमान हैं[२]। इनकी भी पहचान कर ली गई है। खेरवा के दक्षिण में 'कूबर' नाम का गाँव है तथा यहाँ के निवासी समीपवर्ती पर्वत को कूबड़ का पहाड़ कहते हैं। सम्भवतः यही कुबेर है। खेरवा से दो मील पश्चिम वाल्मीकि का आश्रम है तथा इसके समीप ही केदारनाथ की मूर्त्ति है। सम्भवतः इस मूर्ति के कारण समीपवर्ती पहाड़ को केदार नाम दिया गया था। इन दोनों पर्वतों से कुछ ऊँचा रामपुर का पहाड़ भी है। इसकी अधिक ऊँचाई के कारण ही काव्य में इसका नाम शिलोच्चय दिया गया प्रतीत होता है।

काव्य में सर्वप्रथम राणिंगदेव को लगभग १३०० ई. काल में यहाँ का राजा, शासक बताया है। इसके पश्चात् सभी बघेल नरेश इसकी सुरक्षा तथा समृद्धि में लगे रहे। यद्यपि अनेक बार इस नगरी को आक्रमण भी झेलने पड़े। राजा रामचन्द्र के समय भी कम से कम १५७७ ई. तक यह अवश्य ही राजधानी थी, क्योंकि वीरभद्रदेव चम्पू में इसका राजधानी के रूप में उल्लेख है। उसके बाद किसी समय गहोरा को छोड़कर रामनगर को राजधानी बनाया गया था। इस प्रकार लगभग पौने तीन सौ वर्ष तक यह नगरी बघेल नरेशों की विपुल समृद्धि तथा ऐश्वर्य की साक्षी रही थी।

बान्धोगढ़—यह स्थान आधुनिक शहडोल जिले में कटनी-बिलासपुर रेलमार्ग पर उमरिया स्टेशन से लगभग ३० मील उत्तर-पूर्व में अवस्थित था। यहाँ बान्धवगढ़ की पहाड़ी आज भी दिखती है। यह समुद्र तल से २६३२ फीट ऊँची है। यहाँ अब भी दुर्ग के अनेक भग्नावशेष देखे जा सकते हैं।

---

१. या केवयी सूर्यसुताप्तसंगा
प्रवर्धनामृततोयरम्या
वेणीपदं धर्तुमिह क्षमाऽऽस्ते।
सरस्वती धीरवती समेता। -काव्यम् २.२१

२. वही २.९

यहाँ पर बघेल नरेशों की सुरक्षा के लिये अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग वर्तमान था। परम्परा के अनुसार १३ वीं शताब्दी में बघेल नरेश कर्णदेव के विवाह में यह दहेज के रूप में प्राप्त हुआ था। पर काव्य में कहा है कि वीरसिंह ने कुरुवंशी नारायण नामक राजा से छीन कर इस पर शासनाधिकार प्राप्त किया था। स्पष्टतः इस पर वीरसिंह ने पुनः अधिकार किया था। यहाँ पर निश्चय ही शक्तिशाली कुरुवंशी लोग निवास करते थे। आज भी यह जाति 'कमर' या कौर नाम से वहाँ के अनेक ग्रामों में रहती है।

यहाँ पर अनेक आक्रान्ताओं ने अनेक बार आक्रमण किये। पर यह दुर्ग इतना सुदृढ़ था कि उनका उद्देश्य कभी सफल नहीं हो सका। बघेल नरेश गहोरा में अपने को असुरक्षित पाने पर बान्धवगढ़ की ओर भागकर पहुँचते थे। इसलिये यह दुर्ग उन्हें बहुत प्रिय था। बान्धवेश उनकी प्रिय उपाधि थी।

राजा रामचन्द्र अपनी सुरक्षा की दृष्टि से लगभग स्थायी रूप से बान्धवगढ़ में ही निवास करने लगे थे।

महाराज रघुराज सिंह ने अपने 'भक्तमाल' में लिखा है कि कबीर के शिष्य धर्मदास की यह जन्मभूमि थी।

रत्नपुर—यह वर्तमान में बिलासपुर से १६ मील उत्तर एक गाँव के रूप में अवस्थित है। यह रत्नदेव कलचुरि के द्वारा १०वीं शताब्दी में बसाया गया था। अतः उसके नाम से ही इस स्थान का नाम पड़ा। कलचुरियों ने अपनी राज्य सीमा का काफी विस्तार किया था। १२वीं शती तक इनका शासन निश्चित रूप से परिज्ञात है।

१३वीं शताब्दी में बघेलनरेशों को बान्धवगढ़ के दहेज में प्राप्त होने की बात कही गई है। इन्हें यह स्थान कलचुरि नरेश सोमदत्त से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार रत्नपुर के कलचुरियों का शासन काफी दूर-दूर तक प्रमाणित है।

बाद में बघेल नरेशों के रत्नपुर के राजाओं के साथ सन्धि तथा वैर के बड़े विचित्र सम्बन्ध रहे हैं। ये लोग न तो पूरी तरह प्रेम से रह सके, न ही सर्वथा दुश्मनी ठान सके। सर्वप्रथम वीरसिंह ने इस पर आक्रमण करके खूब कर वसूला। बाद में लगता है वीरभानु के समय इनकी काफी मित्रता हो गई

थी। क्योंकि रत्नपुर के राजा दादूराय ने अपनी पुत्री राजमती का विवाह वीरभानु के साथ कर दिया। यहाँ इतिहास का कमाल देखिये। इस बार राजमती ने खुद अपने पिता पर आक्रमण करके रत्नपुर को अपने में मिलाने के लिये वीरभानु को प्रेरित किया। इस पर वीरभानु ने रत्नपुर पर आक्रमण किया तथा अपने अधिकार में कर लिया।

गढ़ तथा गढ़ा—ये दोनों सर्वथा अलग-अलग स्थान हैं। काव्य में गढ़ को गंगा के समीप बताया गया है। इसी गढ़ के राजा अर्जुन ने अपनी पुत्री राजला को नरहरि देव के लिये दिया था। इस स्थान के पास ही 'कर्णतीर्थ' अथवा मिर्जापुर उ. प्र. का 'कन्तित' नामक स्थान अवस्थित है।

पर गढ़ा नामक स्थान वर्तमान जबलपुर जिले में अवस्थित है। यह १६वीं शताब्दी के पूर्वाध में गोंड सत्ता का प्रमुख केन्द्र था। वीरसिंह ने इस गढ़ा को अपने अधिकार करके नर्मदा में स्नान किया था।

अलर्क—यह स्थान वर्तमान अरैल गाँव है जो कि नैनी रेलवे स्टेशन के पास गंगा के तट पर बसा हुआ है। यह प्रायः बघेल नरेशों के राज्य की उत्तरी सीमा रही है। ये राजा प्रायः अपने जीवन के अन्तिम दिन यहीं बिताया करते थे। वीरभानु आदि राजाओं का इस क्षेत्र पर अच्छा प्रभाव था। मुस्लिम इतिहासकारों ने वीरभानु को अरैल का राजा बताया है।

शास्त्रीजी का कहना है कि इसका वास्तविक नाम अरैल या अरल ही है। इसे श्लोकबद्ध करने के लिये अलर्क यह संस्कृत रूप प्रदान किया है।

कोटर तथा गुप्त वाराणसी—काव्य के चतुर्थ सर्ग के प्रारम्भ में बताया गया है कि वीरभानु अलर्क से वापस लौटते समय तीर्थ भ्रमण की इच्छा से कोटर पहुँचे। यह स्थान शालिवाहनपुर से पश्चिम तथा यमुना तट पर अवस्थित है। यह विष्णु, शंकर आदि की अनेक मूर्तियों से अलंकृत है। यह गाँव आधुनिक बाँदा जिले में है।

कोटर से दक्षिण में गुप्त वाराणसी नामक स्थान था। काव्य के अनुसार यहाँ अक्षयवट, मणिकर्णिका घाट तथा ढुण्ढिदेव की मूर्ति वर्तमान है। इसके आगे कुमारह्रद नामक तालाब है। यह रैपुरा गाँव से ७ मील पूर्व अवस्थित है। आजकल इसे कुँवरहद कहा जाता है।

आर्थिक जीवन

काव्य में समाज की आर्थिक दशा के विषय में कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। बघेलवंश की वृद्धि के लिये कौबेरदेव की उपासना को उपयोगी बताया है[१]। वीरभानु राज्य की लक्ष्मी बढ़ाने के लिये सदा चर्चा करते रहते थे। वे प्रतिवर्ष आय-व्यय की भली प्रकार परीक्षा करके आय-व्यय पत्रक बनवाया करते थे तथा सदा उसकी प्रगति की जानकारी लेते थे[२]।

आय-प्राप्ति के जो उपाय बताए गए हैं, वे पारम्परिक हैं। यद्यपि विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा लगाए गए कर का इन्होंने विरोध किया था। राजा भैद चन्द्र ने अपने प्रभाव से जनता को करमुक्त किया था। श्री शास्त्री जी ने यहाँ जजिया कर की ओर संकेत सम्भावित बताया है।

कर के विषय में कवि ने पारम्परिक मान्यता का उल्लेख करते हुए कहा है कि राजा वीरभानु जनपद के लोगों से इस प्रकार कर लेते थे ताकि उन्हें कष्ट न हो[३]। यह मान्यता बौद्ध युग से सभी युगों में निरन्तर मान्यता प्राप्त रही है। भगवान् बुद्ध ने कहा था कि जिस प्रकार भौंरा फूल के रंग तथा गन्ध को बिल्कुल नष्ट न करते हुए भी उससे रस प्राप्त करता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे[४]। इस तथ्य को कर संग्रह के साथ भी जोड़ते हुए सदा इसका उल्लेख किया गया है। यह अलग है कि इसका कितनी मात्रा में परिपालन होता था।

राजा की आय का सबसे प्रमुख स्रोत जमीन पर लगान था। यहाँ भी कवि ने पारम्परिक मान्यता का उल्लेख करते हुए कहा है कि राजा खेती का छठा भाग ग्रहण करता था[५]। प्राचीन काल से ही इसे न्यायोचित माना जाता

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् ५.२

२. वही ५.८९ तथा ९१

३. राजा द्रव्यं तथाऽऽदाज्जनपदमनुजात् येन पीडा न तस्मिन् —काव्यम् ६.३५

४. यथा च भमरो पुप्फं वण्णगन्धमहेठयन्।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे —धम्मपद

५. षष्ठांशभाक्तेः स्वकृतेरकारि - काव्य ६.११.

था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इसका उल्लेख है तथा महाकवि कालिदास ने भी राजा दुष्यन्त द्वारा प्रजा का छठा भाग कर के रूप में वसूल करने की चंर्चा की है।

बघेल-नरेशों के समय भी इस लगान को 'भाग' ही कहा जाता था। इस लगान की दर जमीन की दशा, कृषि उपज तथा विभिन्न जातियों के लोगों से अलग-अलग प्रकार की थी। सामान्यतः उपज का खर्च चतुर्थांश (सवाई) या अष्टमांश (अध-सवाई) काट कर शेष उपज का चतुर्थांश, पंचमांश, या षष्ठांश आदि अलग-अलग प्रकार से वसूल किया जाता था। उच्च वर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय किसानों से उपज का सप्तमांश या अष्टमांश पर साधारण वर्ग के किसानों से साधारण भूमि का छठा हिस्सा वसूल किया जाता था।

प्रस्तुत काव्य में खान से तथा व्यापार मार्ग से भी राजा को आमदनी प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है। एक श्लोक में खान से रत्न निकलने की चर्चा की गई है[१]। अन्य श्लोक में खानों को राजाओं की अभिलाषाओं की कामधेनु बताया है[२]। इसी पाँचवें सर्ग में यह बताया है कि राजा वीरभानु अपने कोश की वृद्धि के लिये व्यापार मार्गों को तैयार कराते थे[३]।

राजा अपने कार्यों के लिये ऋण नहीं लेता था। पर इस काव्य में संकेत है कि सामान्य लोगों को ऋण लेना पड़ता था। क्योंकि एक स्थान पर कहा है कि ऋण लेने के कारण जिनकी जमीन छिन जाती थी, उसे वह राजा पूरा धन देकर वापस लौटवा देता था[४]।

आर्थिक विषमता तथा दरिद्रता के कारण घूस का भी प्रचलन था। काव्य के अनुसार जो लोग घूंस लेते थे, उनकी श्री को यह राजा छीन लेता था[५]। यह राजा अपने धन को धरती में गाड़ कर या पत्थरों से ढक कर रखता था[६]।

---

१. वीरभानूदय काव्यम् ६.३५

२. खनिश्च राजास्पदकामधेनु-
नृपस्तदेतासु कृतादरोऽभूत् —काव्य ५.८१

३. वही ५.७८ ४. वही ६.१७

५. उत्कोचमादाय विनाशयन्ति यास्तच्छ्रियं तच्छ्रियमग्रहीत् सः। —काव्य ५. १४१

६. वही ६.३१

विन्ध्य-भूमि का प्राकृतिक परिदृश्य

प्रस्तुत कवि ने बार-बार विन्ध्य के उच्च पर्वत-शिखरों का वर्णन किया है। द्वितीय सर्ग में गन्ता आदि नदियों का जो वर्णन है वह विन्ध्य की सभी छोटी नदियों का प्रतिनिधि हो सकता है। वहाँ कहा है कि यह हंस आदि पक्षियों से युक्त जल वाली है तथा अपनी तरंगों से मानसरोवर को भी जीत लेने वाली है[१]। अगले श्लोक में कहा है कि यह अपने बढ़ते हुए अमृतमय जल से अत्यन्त रमणीय है।

अन्य प्रसंग में यहाँ की नदियों का यह मनोहारी वर्णन है—

तस्य स्रवन्ती पथिकव्रजानां
स्वगेहवापीव तनोति शर्म

—काव्यम् ५.१५०

अर्थात् विन्ध्यदेश की नदी रास्ते चलने वाले राहगीरों के लिये अपने घर की वापी या छोटे तालाब के समान सुख प्रदान करती है। सचमुच यह विन्ध्यदेश में जगह-जगह बहने वाली सभी छोटी-छोटी नदियों का सच है। ये नदियाँ इतनी बड़ी नहीं होतीं कि लोगों को स्नान आदि में कष्ट हो। ये वर्ष में सभी समय लोगों को अपने पवित्र शीतल जल से लोगों को प्रसन्न करती हैं।

पशु-पक्षी

काव्य में प्रसंगानुसार यहाँ के विविध पशु-पक्षियों का भी वर्णन है। सैन्य बल को बढ़ाने के लिये हाथी-घोड़ों के पालने का बार-बार वर्णन है।

विन्ध्यभूमि के हाथी—विन्ध्य पर्वत में बहुतायत से हाथियों के प्राप्त होने का वर्णन है। एक श्लोक में यमक अलंकार के सुन्दर प्रयोग के द्वारा जंगली हाथियों के प्रदान कर वर्णन इस प्रकार है—

---

१. गन्ता नदी यत्र चकास्ति चंगा तरंगबन्धैर्जितमानसेव।
मरालचक्रादिपतंगनीरा वानीरशाखापिहितप्रतीरा।

—काव्यम् २.२१

विषयानगजान् गजान् पुनः
समदाद् दुर्गपतित्वमादृतः।

अर्थात् राजा ने अगज गजों को प्रदान किया। यहाँ 'अगज' शब्द का अग = पहाड़ + ज = उत्पन्न होने वाले इस विग्रह से 'पर्वतीय' अर्थ तथा गज का हाथी अर्थ है। अन्य प्रसंग में कहा है कि राजा अनुभव करते थे कि हाथियों से राज्य की स्थिरता होती है। अतः वे जंगली हाथियों को रस्सा, पिंजरा आदि की सहायता से जबर्दस्ती पकड़ लिया करते थे[१]। अन्य प्रसंग में कहा है कि रामचन्द्र बघेल ने हाथियों को फाड़ने वाली शक्ति से वन्य प्राणियों का शिकार किया था[२]। एक जगह विन्ध्य के हाथियों का अलग से उल्लेख करते हुए कहा है कि ये हाथी देवताओं के हाथियों के समान बाहर निकले हुए वज्र के समान दाँतों से निरंकुश थे[३]।

प्राचीन मान्यता रही है कि विन्ध्य में पाए जाने वाले हाथी मध्यम श्रेणी के होते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में इन्हें मध्यम श्रेणी का बताते हुए कहा है कि करुष के हाथी अंग एवं कलिंग के हाथियों से हीन होते हैं[४]। सम्भवतः इसी तथ्य को ध्वनित करते हुए सर्वश्रेष्ठ हाथी को प्रकट करने के अवसर पर इस काव्य में कलिंग के हाथी का नाम लिया है। वहाँ कहा है कि बचपन में अन्य पहलवान के साथ लड़ते हुए रामचन्द्र बघेल का धूलिधूसरित शरीर कलिंग के हाथी के बच्चे के समान प्रतीत हुआ[५]। एक अन्य सुन्दर वर्णन में कहा है कि

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् ५.८१-८२

२. वही ११.४३

३. विन्ध्यादिप्रभवास्तदीयकरिणः शूराः सुराणामिव।
प्रोद्यद्वज्ररदोद्धुराः परबलप्रद्राववर्धिष्णवः —काव्यम् ६.३९

४. कलिंगांगगजा : श्रेष्ठा : प्राच्याश्चेति करूशजाः
दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः
—कौटिल्य अर्थशास्त्र २.२.१६

वैसे यहाँ उदयवीर जी शास्त्री जैसे विद्वानों ने करूश को श्रेष्ठ के साथ जोड़ते हुए करूश देश के हाथियों को भी उत्तम बताया है।

५. धृतपाण्डरधूलिधूसरं कलभस्येव कलिंगजन्मनः —काव्यम् ८.१७

रामचन्द्र ने अपनी शक्ति से वारण अर्थात् हाथी को अवारण अर्थात् विघ्न-रहित बना दिया[1]।

घोड़े— सैन्य शक्ति के लिये घोड़ों का प्रयोग अनिवार्य माना जाता था। काव्य में वनायु देश के घोड़ों को श्रेष्ठ बताया है[2]। इनकी थकान को दूर करने के लिये गुड़ आदि खिलाया जाता था[3]।

इस प्रसंग में बताया है कि रामचन्द्र के घोड़े ऊँची उछाल के द्वारा दो पैरों से चलने का भ्रम पैदा किया करते थे[4]। यहाँ यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग करते हुए कहा है कि रामचन्द्र ने घोड़ों की शिक्षा के द्वारा 'नलता' तथा अपने अतुल प्रताप से 'अनलता' प्राप्त की थी[5]। यहाँ अनलता का अर्थ अग्नित्व है तथा नलता का अर्थ राजा नल के गुणों को धारण करना है। यहाँ प्राचीन काल में अश्वविद्या के महाज्ञाता नल की ओर संकेत है। इस नल ने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ अश्वचालन का सफल कार्य किया था। इसने अपनी इस अश्वविद्या के बल से ऋतुपर्ण को ठीक समय पर कुंडिनपुर पहुँचाया था। कवि का कहना है कि रामचन्द्र ने इसी नलत्व को पूरी तरह प्राप्त कर लिया था।

रामचन्द्र गाडा पठार के जंगलों में शिकार खेलने गए थे[6]। वहाँ प्राप्त अनेक जंगली जानवरों का वर्णन प्रस्तुत काव्य में है। उसके अनुसार वहाँ चित्रक अर्थात् धारीदार शेर प्राप्त हुए थे। सांथ ही अनेक सामान्य व्याघ्र तथा शार्दूल व्याघ्रों या बाघों का भी शिकार किया गया था। वहाँ पर अत्यन्त क्रूर शालावृक अर्थात् भेड़िये तथा तीखे तथा भयंकर दाँतों वाले सुअर भी देखे गए थे तथा[7] राजा रामचन्द्र ने इनका भी शिकार किया था।।

प्रस्तुत काव्य : परवर्ती साहित्य के लिये प्रेरणा—यह ग्रन्थ अपने नाम के अनुसार काव्य है तथा इसके साथ ही इतिहास भी। सामान्यतः इतिहास

---

१. मदवारणमप्यवारणं स करास्फालनतः समानयत् —काव्यम् ८.२८

२. काव्यम् २.१५ ३. वही ३.७१

४. द्विपदक्रमिधावनभ्रमिप्लुतिभेदाननुभावयन् हयम् —काव्यम् ८.२५

५. नलता च तथाश्वशिक्षयाऽनलता वाप्यतुलप्रताप —काव्यम् ८.२

६. काव्यम् ११.३१ ७. वही ११.३४ तथा २७

में काव्य का प्रयोग देख कर लोगों को आशंका पैदा होती है। इतिहास प्राचीन काल के अच्छे या खराब तथ्यों को जैसे का तैसा रखने के लिये प्रतिबद्ध होता है। पर काव्य में लोकरंजन के लिये अलंकार इत्यादि के द्वारा कल्पना का भी समावेश होता है। अतः इतिहास में काव्य को जोड़ने पर इसकी तथ्य-परकता में कमी की आशंका होती है। प्रस्तुत काव्य में इन दोनों का सन्तुलन रखते हुए इनका अद्भुत समन्वय स्थापित किया गया है। उदाहरण के लिये इस काव्य का एक ही श्लोक प्रस्तुत है—

स राज्यमस्मिन्ननघे तनूजे निधाय तस्थौ भवने सुखेन।
अन्ते दिनस्य द्युमणिर्यथा स्वं दीप्तिव्रजं वायुसखे समर्प्य।।

—काव्यम् १.८३

अर्थात् वह राजा (शालिवाहन) अपने इस निष्पाप पुत्र पर सम्पूर्ण राज्य का भार डालकर राजभवन में सुख से रहने लगा। जैसे दिन का अलंकार (सूर्य) अपनी दीप्ति को अग्नि के लिये समर्पित करके निश्चिन्त हो जाता है।

यहाँ पर श्लोक का पूर्वार्ध इतिहास है। पर इसका उत्तरार्ध काव्य है। किसी काव्य में अचेतन से भी चेतन के समान व्यवहार कराया जा सकता है। यों भी दार्शनिक भाषा में हमें किसी को अचेतन के रूप में तय कर देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। क्योंकि विश्व में सबकी अलग-अलग प्रकार की चेतना है। यह आवश्यक नहीं कि हम सबको पहचान सकें।

अतः प्रस्तुत काव्य में यह माना है कि सूर्य रात्रि में अग्नि को उत्तराधिकारी बना कर निश्चिन्त हो जाता है। क्योंकि सूर्य तथा अग्नि के स्वरूप तथा लक्षण में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। अद्वैत वेदान्त में जीव और ब्रह्म का उसी प्रकार तादात्म्य दिखाया है, जिस प्रकार अग्नि तथा स्फुलिंग का अभेद होते हुए एक दूसरे में विलय हो सकता है। यह हो सकता है कि इनमें एक छोटा हो तथा अन्य बहुत बड़ा हो। पर जहाँ तक गुणों का सम्बन्ध है, वे दोनों एक है। एक छोटा सा प्रदीप भी जल की शीतलता का विरोध करता ही है। जल की अधिकता होने पर वह नष्ट तो हो सकता है। पर जब तक वह अस्तित्वशाली है तब तक वह शीतलता का विरोध करते हुए ऊष्मा तथा प्रकाश अवश्य ही प्रदान करेगा। उसके इस गुण के साथ कभी भी समझौता नहीं किया जा सकता। अतः सूर्य का सबसे सही उत्तराधिकारी प्रदीप ही है।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक कविता लिखी है, जिसका संक्षिप्त भाव यह है कि एक बार सूर्य प्रातःकाल से अपनी ऊँचाइयों में उठता चला गया। वह इतना अधिक ऊँचाइयों में पहुँचा, इतना प्रखर प्रकाश किया कि उसके समान अन्य कोई नहीं रहा। वह अकेला समूची धरती तथा आकाश को ऊष्मा देता रहा। पर कालक्रमानुसार हर वस्तु का अवसान तो आता ही है। धीरे-धीरे इतना विशाल तेजः पुंज भी परकटे पक्षी की भाँति नीचे गिरने लगा। सायंकाल आते आते उसके अस्तित्व का संकट उपस्थित होने लगा। तब सूर्य ने सोचा कि जब तक मैं पुनः परिपुष्ट होकर वापस न आऊँ, तब तक कौन मेरा उत्तराधिकारी बनेगा। कौन पूरा करेगा मेरा मिशन! तभी उसे मन्दिर एक दीपक जलता हुआ दिखाई पड़ा। उसने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। और सचमुच वह दीपक ओस तथा हवा के थपेड़ों का विरोध करते हुए रात भर पूरे वातावरण को ऊष्मा प्रदान करता रहा!! इसी प्रकार यदि कोई भी जीव उस महेश्वर के गुणों का थोड़ी मात्रा में भी वरण करता है, तो वह उसके समकक्ष हो जाता है। आवश्यकता केवल यह है कि वह जीवन पर्यन्त दीपक के समान उन गुणों को बनाए रख सके।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की कहानियों में ऐसे भावों की प्रेरणा प्रस्तुत काव्य जैसे वर्णनों से ही प्राप्त हुई है।

वेद वाणी वितानम् के अन्य प्रकाशन

१. **जगन्नाथ-शतक-** श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जूदेव विरचित भक्तिपरक अनुपम हिन्दी काव्य ग्रन्थ। डा. सुद्युम्न आचार्य की व्याख्या, भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन आदि सहित। *मूल्य १५/- रु. मात्र*

म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रशंसित तथा पुरस्कृत

२. **जगदीश-शतकम् -** श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जूदेव विरचित इस संस्कृत ग्रन्थरत्न का प्रथम बार प्रकाशन। साथ ही महाविद्वान् पं. रंगाचार्य वाधूल की अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण प्राचीन संस्कृत टीका तथा डा. सुद्युम्न आचार्य की सुक्षेमा हिन्दी व्याख्या से सुसज्जित। *मूल्य २२/- रु. मात्र*

३. **वीरभानूदयकाव्यम् (प्रथम सर्ग) -** महाकवि माधव उरव्य विरचित। बघेलखण्ड के नरेशों पर अत्यन्त उत्कृष्ट तथा सुललित काव्य-इतिहास ग्रन्थ। डा. सुद्युम्न आचार्य की विस्तृत संस्कृत, हिन्दी व्याख्या, अनुशीलन आदि से अलंकृत। *मूल्य ८/- रु. मात्र*

निम्न सभी पुस्तकों के लेखक - डा. सुद्युम्न आचार्य

४. **अधिविज्ञानं दर्शनशास्त्रम्** *मूल्य ९०/- रु. मात्र*

भाषा संस्कृत। यह भारतीय दर्शनशास्त्र तथा आधुनिक भौतिक विज्ञान विषय पर तुलनात्मक, समीक्षात्मक अपने विषय का अनूठा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। यथा स्थान चित्रों, चार्टों का भी उपयोग है।

५. **रोचन्तां शब्दभूमयः** *मूल्य ४०/- रु. मात्र*

भाषा-संस्कृत, इंग्लिश। उ.प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत। इसमें संस्कृत, हिन्दी शब्दों तथा उनकी व्युत्पत्तियों पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है।

६. **राजन्तां दर्शनांशवः** *मूल्य ५०/- रु. मात्र*

भाषा-संस्कृत, हिन्दी। उ.प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत-इसमें भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान विषय पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है।

७. **The glory of the Vedas** *मूल्य ८/- रु. मात्र*

इस में वेदों की प्रासंगिकता तथा इनकी बहुमूल्य विशेषताओं का अतिरोचक निबन्धों के अन्तर्गत वर्णन है।